शान्ति और सुख।

मर्य्यादापुरुषोत्तम राम, श्रान्तपथिक, धीरपतिव्रता,

नेलसन, वीरचूडामणि इत्यादि के लेखक

अखौरी कृष्णप्रकाश सिंह

लिखित।

हरिदास वैद्य

द्वारा प्रकाशित।

कलकत्ता

२०१, हरिसन रोड के नरसिंह प्रेस में

बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा
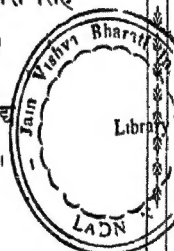
मुद्रित।

सन् १९१४

प्रथम वार ५००

मूल्य ।=)

अखौरी कृष्णप्रकाश सिंह ।

NARSINGH PRESS

समर्पण

श्रीमान् देवेन्द्रनाथ सेन एम. ए.

प्रिन्सिपल

बिहार नेशनल कॉलेज

के करकमलों में

सादर समर्पित।

अखौरी कृष्णप्रकाश सिंह।

"आवश्यक्ता है :—

सुधारकों की

दूसरों का सुधार करनेवालों की नही
परन्तु अपना सुधार करनेवालों की

जिन्होंने प्राप्त किया है

विश्वविद्यालय की डिगरियॉ नही
परन्तु अपने अहंकार पर विजय

आयु· ब्रह्मानन्द की युवा अवस्था

वेतन ब्रह्मत्व।

शीघ्र प्रार्थनापत्र भेजो :—

विश्व-स्वामीको अर्थात् अपने आत्मा को।

स्वामीराम।

लेखक का वक्तव्य।

मुझे एकबार लार्ड एव्हवरी की पुस्तको के अध्ययन का सुअवसर छात्रावस्था में प्राप्त हुआ था। उसी समय से, मै उनके अनुभवपूर्ण वचनामृतका रसास्वादन अपने भाषाभाषी पाठको को कराने के लिये उत्सुक था. परन्तु अन्य पुस्तको के लिखने में व्यस्त रहने के कारण, मेरा मनोरथ अभी तक सफल नहीं हुआ। अस्तु। आज, मुझे अपने कृपाशील पाठकों और मित्रो के सन्मुख, अपनी अभिलषित वस्तु की भेट के साथ, उपस्थित होने में बडी प्रसन्नता होती है।

लार्ड एव्हवरी की पुस्तक कुछ ऐसे ढंग से लिखी गई है, कि उसका ठीक ठीक भाषानुवाद करने में बहुतेरी बातों के समझने में अडचन पडती है। इन्हीं कारणोंसे, मुझे भी, जहाँ तहाँ, मूल लेखक के आशय को साफ़ करने के लिये, अपनी ओर से कुछ न्यूनाधिक करना पडा है।

मैं कोई लेखक नहीं हूँ, जो अपने लेख के द्वारा पाठको के मनोरञ्जन करनेका दावा करूँ। आप सज्जनोको महात्मा एव्हवरी के उपदेशो को, टूटे फूटे शब्दो में, सुना देना ही मेरा

मन्तव्य है। आप मेरे लेखों के लिये नहीं, वरन् मूल लेखक के नाते ही, इसे एकबार यदि पढ़ जायगें, तो मेरा परिश्रम सफल हो जायगा।

अपना वक्तव्य समाप्त करने के पूर्व, मैं श्रीमान् देवेन्द्रनाथ सेन, एम० ए०, प्रिन्सपल, बिहार नेशनल कॉलेज को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिन्हों ने मेरी छात्रावस्था में, पिता-तुल्य मेरी रक्षा कर, सहायता और उत्साह दे, मुझे संसारके सम्मुख आने के योग्य बनाया। मैं अपने अन्तरंग मित्रों, बाबू दयावन्त सहाय तथा बाबू रामप्रसाद को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मुझे पूरा उत्साहित कर, पुस्तक-संकलन में सहायता दी है।

लेखक।

विषय-सूची ।

सुख।

संसारमें सब कोई सुख और शान्ति चाहते है। इससे अधिक या इससे न्यून, मनुष्य इच्छा ही क्या कर सकता है ? बिना सुखके शान्ति, वा बिना शान्ति के सुख, प्राप्त हो सकता है या नहीं, यह सन्दिग्ध है। शान्ति और सुख मनुष्य किस प्रकार प्राप्त कर सकता है, यही बतलाना इस प्रबन्धका मुख्य मन्तव्य है।

सुख और शान्तिका आधार क्या है ? धनसे सच्चा सुख नहीं मिल सकता, अर्थ-सिद्धि सुखका कारण नहीं, मित्र सुखी नही बना सकते, बल और प्रभुता सुखके साधक नहीं, पर हां, इसमें सन्देह नहीं कि ये सुख के मार्ग अवश्य हैं, परन्तु ये सुखी कदापि नहीं कर सकते।

प्रकृति सब कुछ कर सकती है। कीर्ति, स्वास्थ्य, धन, दीर्घजीवन दे देना इसके बायें हाथका खेल है, परन्तु सुखी बनाना इसकी भी शक्ति से परे है।

सुखी होनेके लिये मनुष्यको स्वयं उद्योग करना चाहिये। जब कभी बुद्धिमान मनुष्य बहुत प्रसन्न होते है, तो कहते है कि मैंने आज "आत्म-रमण" किया है।

"आत्म-रमण" शब्द सुखका ठीक पर्यायवाचक है। हमारा सुख हम पर ही निर्भर है। हम लोगोंको, एक दूसरेसे, आचार, विचार, वय और खान-पानमें इतनी भिन्नता है, कि हम लोगोंको सुख-प्राप्तिका एक अभिन्न नियम बनाया नहीं जा सकता; वरन यों कहिये, कि सार्वलौकिक सुख-प्राप्तिका कोई एक नियम निर्दिष्ट करनेवाले आत्म-श्लाघी मात्र हैं।

वैज्ञानिकों में सदा इस नियम-विधानके विषय में मतभेद होता चला आया है। सब कोई अपनी अपनी खिचड़ी अलग अलग ही पकाना चाहते है। यदि आप पूछें, कि इन नियमोंकी आवश्यकता ही क्या है; तो पहले पाठकों को, यहाँ पर, हम सुख-प्राप्त करनेके नियमोंके लिखनेका कारण बतलाते है।

संसारमे विरले ही कोई ऐसे माई के लाल होंगे, चाहे वे जीवनमें कितने ही सफल-मनोरथ क्यों न हो रहे हों,जो अपने मूल जीवनकी समालोचना करते समय शोक न प्रकट करते हों, कि हाय! हाय!! यदि मैं अमुक कार्य न करता वा अमुक तृष्णाको रोक लेता; तो आज दिन और भी कितना

अधिक सुखी होता। पाठक जानते हैं, कि इस ग्लानि का कारण क्या है? बुद्धिकी अपरिपक्वता ही इसका मूल कारण है। जिस विषयको वे आज जानते हैं, यदि पहले से जानते तो अमुक अकर्तव्य और अकरणीय कार्यको क्यों करते।

विद्वान थियोडर पार्कर (Theodore Parker), जो अल्प वयसमें ही काल के कराल गालमें पड़ गया, अपनी मृत्यु-शय्यापर बिलखता ही रहा कि, "मैंने क्यों कोई ऐसा उपदेश नहीं सुना अथवा ऐसी पुस्तक नहीं पढ़ी, जिससे मुझे रहन-सहन और अध्ययनका पूरा ज्ञान हो जाता।" पाठक! ऐसा विद्वान जब सुख-प्राप्तिके नियमोंके लिये बिलखता रहा, तो भला दूसरोंकी क्या गणना? अब तो पाठक इन नियमोंकी आवश्यकता समझ गये होंगे।

मनुष्यका धर्म है, कि जो कुछ उत्तम पदार्थ अपने पास हों दूसरे को अवश्य देवे। पूर्व समय में, एथेन्समें, एक कानून था, कि जो कोई किसी दूसरेको अपनी जलती बत्तीसे बत्ती जलानेसे रोकता, वह मार डाला जाता था। पाठक! इस परोपदेशका गुण उपकार करनेवाले पर बड़े मार्के का होता है। इतिहास-पण्डित प्लूटार्च (Plutarch) अपने एक लेखमें कहता है कि, "बड़े आदमियोंकी जीवनियाँ, पहले पहल, मैंने दूसरोंके उपकार के लिये ही लिखनी आरम्भ कीं, परन्तु गये दिनोंमें, मैं स्वयं ही उन जीवनियोंसे लाभ उठाने लगा। वे मेरे अध्ययनको प्रधान विषय और जीवन-

सुधारकी कारण हो गईं। मैं उन स्वर्गीय मृत कर्त्तव्य-परायणोंकी जीवनियोंको अपने सम्मुख दर्पणकी छायाकी नाईं देखने लगा और अपने जीवनको उनके रंगोंसे रञ्जित करने लगा। इस प्रकार इतिहास लिखने तथा उसके साथ सतत् सम्बन्ध रखनेसे, हमलोग अपने हृदय में पूर्व वीरोंके उत्तम गुणोंको स्थान देते हैं तथा अपनेको ऐसा शिचित बना लेते हैं, कि जब कभी कोई अग्रहणीय वा नीच वस्तु सम्मुख आती है; तो तत्काल इतिहासके सज्जनोंकी सत्कीर्त्तियां नेत्रोंके सम्मुख नाचने लगती है और हम लोग बुरे कार्य्य करनेसे उसी दम रुक जाते हैं।

संसार आनन्द चाहता है; परन्तु इसके पानेका नियम बिरले ही जानते है। हम लोग बात करते समय तो शान्ति और सुख को श्रेष्ठ बतलाते है; परन्तु कार्य करते समय हमलोग इस अमूल्य रत्नको, नाम गाम और धनके लिये, कौड़ीका तीन कर देते है। शोक!

पाठक! जीवन, एक साधारण चित्र वा एक पेजकी पुस्तक नहीं, कि रास्ता चलते चलते देख या पढ़ लीजाय; वरन् यह अगणित पेजों और अध्यायोंका एक बृहत् ग्रन्थ है, जिसका पढ लेना जरा टेढ़ी खीर है। हमलोग बार बार कहते है, कि इस संसारमें अमुक बात हुई, अमुक बात नहीं हुई। पाठक! संसार कोई एक नहीं हैं, प्रत्येक मनुष्य, अपने अपने लिये, विलग विलग, संसार निर्म्माण करता है।

बुद्धिमान मनुष्य जीवनको वास्तविक रूपमें देखते हैं। वे जीवनको भयानक हार-जीत से घबरानेवाले नहीं ; वरन हर हालमें सुख-दुःख, सुख-स्मरण वा निष्फल परिताप— इत्यादि का दृढ़तासे प्रतिकार करनेको तत्पर रहते हैं।

"आत्म-संयम" सुखका प्रथम और मुख्य सोपान है। आत्म-सम्मान, आत्म-ज्ञान और आत्म-संयम,—ये तीन ही जीवनको विजय-शिख रपर पहुंचानेमें समर्थ हैं।

"विजय" शब्दसे हमारा अभिप्राय साधारण विजयसे नहीं , वरन उस विजयसे है जो अपने आप पर प्राप्त की जाती है। प्रत्येक मनुष्य दूसरोंसे शासित होता है , परन्तु दूसरोके आधीन होनेसे आत्म-शासित होना लाख दर्जे उत्तम है। अन्य शासकसे तो कभी कभी हम लोग छिप भी सकते है, परन्तु अपने आप से छिपना कठिन है। दूसरेके वश होनेसे किसी को वशमें रखना उत्तम है और अपने आप पर वश रखना, दूसरोंके वशमें रखनेसे उत्कृष्ट है। प्रत्येक मनुष्य अपना हित करनेको वाध्य है।

कहते है,कि मनुष्य मात्र विवेक वा विकारके वशीभूत हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिये, कि विकार, मनोविकार, निज-अधिकृत मनुष्यको अगणित आपदाओंमें फँसा छोड़ता है। जो मनुष्य आत्म-विजयी नहीं हुआ, विचारनेको बात है कि, सम्भवतः वह पर-विजयी कब हो सकता है? और साथ ही साथ जिसने आत्म-विजय प्राप्त कर ली है , उसके लिये संसार पर

विजय प्राप्त कर लेना क्या बात है ? यदि मनुष्य अपने आपको नहीं जीते, तो दूसरा कोई उसपर अधिकार अवश्य जमा बैठेगा।

उदाहरण के लिये देखें,—एक क्रोधी मनुष्य शान्त-शील मनुष्यसे कभी नहीं जीत सकता। किसीने ठीक कहा है,—"क्रोध वर्षाकी बूँदें हैं, जो किसी वस्तु पर गिरते ही टुकड़े टुकड़े हो जाती हैं।"

सदा अपने क्रोधको रोको, यदि तुम ठीक पथ पर हो तो क्रोध रोकनेमें तुम्हें कोई प्रयास नहीं करना होगा ; परन्तु यदि तुम स्वयं भूल में हो तो आँख दिखाना "उल्टा चोर कोतवाल को डंडे" वाली कहावत को चरितार्थ करने लगेगा। यदि तुमने आत्म-स्वामी होना सीखलिया तो बस समझ जाओ, कि तुमने संसार के स्वामी होनेकी वर्णकामाला पढ़ ली। पाठक ! आत्म-विजयी होना कोई सामान्य बात नहीं है, इसका अभ्यास करनेके लिये अपने जीवनकी प्रत्येक छोटी मोटी बातों पर सतत् ध्यान रखना पड़ेगा , परन्तु यह मै हाँककर कह सकता हूँ, कि यदि मनुष्य चाहे तो उसे आत्म-विजय प्राप्त करलेना कुछ असम्भव नहीं।

संसार का संसर्ग मनुष्यको नाश नहीं करता ; परन्तु हृदयान्तर्गत पाप-बुद्धि ही असल नाशक है। हम लोग परमेश्वरसे विनती करते है, कि हमलोग लिप्सामें न पड़ें। निन्यानवें सदी, हमलोग स्वयं ही लालच में अपने को डालदेते हैं। एक

कहावत है, कि कोई मनुष्य दिन रात एक प्रेत से पीछा छुड़ाने की चिन्तामें व्याकुल रहता था। एक दिन जब उस प्रेतके मुखपरसे कपड़ा हटा, तो मनुष्यने देखा कि यह तो उसकी अपनी ही छाया है।

शेक्सपियरने कहा है कि, "इसमें सन्देह नहीं, कि एक सर्व्वोपरि वस्तु हमारी रक्षा, सदा, करती रहती है और हमारे बिगड़े कार्य्यों को सुधारती रहती है, परन्तु यह हमलोगोंका ही अपराध है, कि हमलोग अपने नाशका बीज अपने ही हाथों से बोते हैं।" क्या 'शान्ति' और 'सुख' धन-प्राप्ति से प्राप्त हो सकते हैं? बहुतोंका विचार है, कि धनसे विश्राम और विश्राम से सुख मिलता है। परन्तु यह सुख है कैसा? विचार करें। संसारमें सुख भी दो प्रकारके होते हैं—सत्य और असत्य। असत्य सुख चञ्चल और सत्य सुख अचञ्चल है। सत्य सुख-प्राप्तिके लिये, मनुष्यको, पहलेही, दुःख उठाना पड़ता है, असत्य सुखके लिये पीछे; परन्तु स्मरण रहे, कि इस बादके चुकौती में सूद दर सूदके साथ मूल देना पड़ता है।

प्रत्येक दैहिक सुख, प्रथम तो, अच्छा मालुम होता है, परन्तु अन्तमें भोगीका प्राण लेकर ही छोड़ता है।

एक विद्वानका कथन है, कि यदि जीवनमें असत्य सुख नहीं होता; तो मनुष्य-जीवन इतना गर्हित कदापि नहीं होता। दूसरा कथन है, कि "मनुष्य-जीवन में आनन्द ही करते रहने पर भी सम्भव है, कि उस जीवनमें क्षण मात्रका भी सच्चा आनन्द

न हो।" "मौन और शान्ति" जीवनके सब आनन्दोंसे बढ़कर हैं।

पाठक ! पूछ सकते है, कि यदि सब कोई चुप ही रहें; तो फिर आनन्द का वर्णन कौन करेगा ?

इस प्रश्न का उत्तर शेक्सपियर के शब्दोंमें उत्तमता पूर्वक दिया जा सकता है,—"मौन आनन्दका अग्रगामी दूत है; क्योंकि यदि शब्दोंमें प्रसन्नता प्रकट कर देने की शक्ति हो गई, तब तो प्रसन्नताकी मर्यादा ही न रही।"

एक अँगरेज़ी कहावत है, कि जब पृथिवी सिरजी गई, उस समय देवताओंने आज्ञा देदी, कि एक निर्दिष्ट दिन जो कोई पृथिवीका जो भाग चाहे अपनालेवे। नियमित समय आते ही, गृहस्थों ने उपजाऊ भूमि, व्यापारियोंने समुद्र और मार्ग, साधुओंने गिरि-कन्दराएँ, राजाओंने पुल तथा घाटियाँ जहाँसे कर वसूल कर सकें, अपना लिये। कविलोग, जो विचारें अपने काव्य-विचार में मग्न थे, बहुत देर से पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने देखा, कि सब तो बँट गया, अतः वे निराश होकर लौटे। इसपर देवताओंको दया आगई। उन्होंने कवियोंको बुलाकर कहा, कि अच्छा तुम्हें स्वर्गमें आने जानेकी आज्ञा हम लोग देते हैं; जब कभी तुम्हारी इच्छा हो चले आना, द्वार तुम्हारे लिये सदा खुला रहेगा। कवियोंने सधन्यवाद स्वीकार कर लिया; परन्तु उनको अपने मनोविचार से ही फ़ुरसत नहीं रहती, कि वे देवताओंके यहाँ जायँ, वरन् जब कभी शोक-चिन्ता

रहित हो वे स्थिर रहते, उस समय उन में स्वयं ही देवताओं को मृत्यु लोकमें खींच लाने की शक्ति आजाती थी।

यह काव्य-सुख निस्सन्देह हमलोग सब किसीको नहीं प्राप्त हो सकता, परन्तु हममें से सब किसी को सुख-प्राप्तिके लिये ईश्वरके यहांसे बुलावा आता है, चाहे हम जायँ या न जायँ।

हमलोग सब कोई बलवान, महान, धनी, गुणी, अवश्य नहीं हो सकते, परन्तु सुखी अवश्य हो सकते है। हमलोग अपने जीवन को सुन्दर और देदीप्यमान, जिस समय चाहें, बना सकते है; यह हमलोगों पर ही निर्भर है। यदि हमलोग चाहें तो सफल-मनोरथ अवश्य हो सकते हैं, परन्तु कठिन परिश्रम अपेक्षित है। माताके गर्भसे ही कोई मनुष्य महान नहीं जन्मता, उद्योग करना उचित है।

बालक अनपकारी होते है, परन्तु सदाचारी कैसे हो सकते है? वे बालके जो, अभाग्यवश, अपने पूर्वजोंकी कुत्सित प्रकृतिके उत्तराधिकारी होते हैं, वे भी अपना पीछा उद्योग करनेसे छुडा सकते है।

सद्फल धूर्त्ततासे नहीं, वरन सच्चरित्रतासे प्राप्त हो सकता है।

पाठक! अब विचारें, कि हमारे दुःखका कारण क्या है। दुःख और पीडा मनुष्योंपर स्वभावतः आ जाते है, परन्तु बहुत से मनुष्य अपने दुःख और पीडाको, अनावश्यक ही, गुरुतर कर देते है। बहुतसे मनुष्य तुच्छ विषयोंको भी बढाकर दुःखी से

तूफान कर देते हैं। यदि मनुष्य तुच्छको तुच्छ ही जाने, तो वृथाका इतना शोक काहेको होवे? हम लोग दुःखपर अधिक ध्यान देते है और अनेक सुख-सामग्रियाँ जो हमें चारों ओरसे घेरे रहती हैं, उनकी क्षणभर भी पर्वाह नहीं करते; उन्हें हम लोग अवश्यम्भावी समझकर ही उनकी अवज्ञा कर देते हैं।

रात्रिके समय, जब हम लोग सोने जाते हैं, हमारे मानसिक दुःख, सन्ध्या की छायाकी नाईं जो दानवाकार बोध होती है, और भी असह्य हो जाते है और हमलोग उन ईश्वर-दत्त आशीर्वादोंका, जिनसे हमलोग घिरे हैं,विचार भी नहीं करते।

दुःख सदा ही बुरा नहीं। कभी दुःख हमलोगोंको चेतावनी तथा भारी दुःखसे बचानेके लिये ही होता है। जिस बालकको हाथ जलजानेका दुःख हो चुका है, वह अग्निं से सदा सावधान रहेगा। यह सब कोई जानते हैं, कि दैहिक दुःख न होनेसे अनेक भारी आपदाओंकी आशङ्का रहती है, परन्तु मानसिक दुःखके विषयमें लोग मत-भेद उपस्थित करते हैं। यह हमलोग शायद नहीं मानेंगे, कि पूर्व चिन्ता अनेक विपत्तियों तथा शोकार्त्त व अधीर होने से बचाती है।

निस्सन्देह, भावी दुःखोंके विचारसे दुःखित होना मूर्खता है, क्योंकि वे दुःख होवें न होवें। गढेके पास पहुँचनेके पहले ही कूदना कैसी मूर्खता है! काम बिगड़ते रहने पर, मनुष्य आपसे आप दुखी हो जाता है, परन्तु यह दुःख भी बेवकूफीसे खाली नहीं है; क्योंकि जो काम बिगड रहा है उसको

हम सुधार सकते हैं या नहीं सुधार सकते। यदि सुधार सकते हों, तब तो उद्योगकरके सुधार देना चाहिये, वृथा दुःख करना निष्प्रयोजन है। यदि काम सुधर ही नहीं सकता, तो फिर शोक क्यों?

जीवनके अनेक शोक दुःख वास्तविक उतनी परीक्षा और सुअवसर के स्वरूप हैं। यदि हमलोग दिन-रात कपोल-कल्पित दुःखोंपर बिलखा करें, तो संसारके सच्चे आशीर्वादोंकी प्रशंसा करनेका समय ही कहां रह जाता है? आश्चर्य है, कि जो सुख प्रतिदिन होते हैं उनके लिये ईश्वरके कृतज्ञ होनेके बदले, अनवधानताके कारण, उनपर विचार भी नहीं किये जाते।

हमलोगोंको जो कुछ प्राप्त है, उसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिये, और जो अप्राप्य है उसके लिये दुःख करना वृथा है।

हमलोग समझते हैं, कि पश्चाताप करनेसे पापका प्रायश्चित होता है, यह हमलोगोंकी भूल है। पश्चाताप ही पापका फल है। सबसे कठोर दण्ड क्रोधित आत्माकृत तिरस्कार ही है। जो वस्तु उत्तम है, वही सच्चा सुख दे सकती है।

महात्मा रस्किनने एक चित्रको देखते हुए कहा है, कि हमारे भूत जीवनके बुरे कर्म हमें सुन्दर कलाके आनन्दसे वञ्चित रखते हैं और अच्छे कर्म उसकी मनोरमताको बढ़ाते हैं।"

शान्ति और सुख भाग्यसे प्राप्त नहीं होते। भाग्य पर विश्वास निर्बल-चित्तके लोगोंकी झूठी दलील है, मैं भाग्य

पर विश्वास नहीं करता और जो मनुष्य सौभाग्य-सूर्य्य उदय होनेकी आशामें बैठे रहते हैं, वे सदा दुर्भाग्य-सागर में ही गोते लगाते रहते हैं।

हमलोगोंका संसार बड़ा सुन्दर है, परन्तु एक भी सुन्दर वस्तु विना कठिन परिश्रमके प्राप्त होनेकी नहीं।

इस संसारमें, यदि हम लोग शीघ्र ही हतोत्साह हो जाया करें, तो शायद ही कभी बड़े पदको पा सकें।

धैर्य्य—दृढ़-धैर्य्य ही सफलताका मूल मार्ग है।

"जो खेतसे अन्न पैदाकरके खाना चाहते हैं, वे पहले हल जोतें वा बैल हाँके।"

कार्य्य करना कुछ हास्यास्पद बात नहीं, कठिन परिश्रम, दैहिक स्वास्थ्य तथा मानसिक शान्तिके लिये अत्यावश्यक है,—ये दोनों यमज हैं।

निद्रा एक सबसे बड़ा आशीर्वाद है। परन्तु इस सुखके भोगनेमें भी परिमितता आवश्यक है। सुखका आधिक्य होना भी बुरा ही है। दिन रात सोये रहिये, फिर देखिये, दरिद्रता रूपी दानवी कैसे आपका सर्वस्व हरण कर लेती है।

विश्रामका अर्थ आलस्य कदापि नहीं; विश्राम करनेसे मनुष्य कठिन परिश्रम कर सकता है, परन्तु आलस्य करना कार्यसे जी चुराना है।

यदि अस्वास्थ्य कोई कठिन परिश्रम करनेके मार्ग को

बन्द करता है, तो यह परित्याग तथा वीरताका सुखमय द्वार अवश्य खोल देता है। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवनको एक सात्विक मङ्गलमय जीवन बना सकता है। शारीरिक दुःखों पर विजय पाना, कठिनाइयों पर विजय पानेसे अवश्य श्रेष्ठ है।

किसीका भी जीवन सुखमय हो सकता है। शरीर भले ही, बिना हमारे दोषके, रुग्न हो जाय, परन्तु बुद्धि, बिना हमारे किये, कदापि दोष-पूर्ण नहीं हो सकती।

यह विचारना सरासर भूल है, कि आलस्य स्वत्व और परिश्रम दण्ड है। परिश्रम करना अपमान कदापि नहीं; वरन आलस्य अवश्य ही अपमान है।

ग्रीस, एक उन्नति-शील राज्य होने पर भी, परिश्रम और आलस्य के गुण-अवगुणके नहीं समझनेके कारण, आज संसार-इतिहास से एक बारगी लोप हो गया।

हमलोगोंको यही भूल कदापि नहीं करनी चाहिये। हमलोगोंको दूसरी जातियोंसे सद्गुण सीखने चाहियें। बर्मी लोगोंको लड़ाई की श्रद्धा से और जापानियोंके "बुशीदो" (आत्माकी विशिष्ठता) से हमें उपदेश लेना चाहिये।

बुशीदो हमारे नेत्रोंके सम्मुख धनी होनेसे निर्धन होनेके सद्गुणोंको, गर्वसे नम्र होनेके सद्फलोंको, देदीप्यमान कर ला खड़ा करता है। इतना ही नहीं, जापनियोंका यह

सावरी मन्त्र हमें स्वार्थतासे निःस्वार्थ होने तथा देश और जाति मात्रको भलाईके सम्मुख अपनी भलाईको सहर्ष आहुति कर देनेका अपरिमेय महत्व सिखलाता है। बुशीदो हमारे रुधिरमें वीरता का आवेश तथा मस्तिष्क में शत्रुओंके सम्मुख पीठ दिखनेकी गर्हिततताका मन्त्र फूँक देता है। बुशीदोके प्रेमी मृत्यु का दृढ़तासे सामना करते है और दुर्नाम से मृत्यु को कहीं श्रेय मानते हैं।

बुशीदो, अपने श्रेष्ठों के सम्मुख सिर नवानेका तथा अपने और अपने परिवार के सुखको जातिको सुख साधनरूप योगाग्नि में आहुति कर देनेका उपदेश करता है। यह शारीरिक वीर्य तथा मानसिक बलको बढ़ाता और सामरिक जीवनका उपदेश देता है। यह दृढ़ता, धैर्य्य, बल, श्रद्धालुता, वीरता, आत्म-संयमका सदुपदेश देनेके कारण नर नारी सबको शान्ति देनेमें वा समर के समय में चरित्र गठनके नियमोंमें श्रेष्ठहै।

बुशीदो, सत्य पूछो तो, जातिको आत्मा और जापानियोंको महात्मा बनानेका कारण कहे जानेके योग्य है।

एक लेखक लिखता है, कि शिक्षा जातिकी विचार-शक्ति पर, न कि विज्ञान पर, निर्भर है। मेरा तो यह मत है, कि सत्य शिक्षा दोनों पर आधारित है। विज्ञानके बिना हम लोगोंकी दैहिक स्थिति असम्भव नहीं, तो शोकजनक अवश्य हो जाती है; और विचार-शक्ति बिना जीवन निरर्थक हो जाता है। एक शरीरके लिये और दूसरी आत्माके लिये आवश्यक है। विज्ञान ने वे

आश्चर्यजनक घटनाएँ कर दिखलायी है जो बड़े बड़े ऐन्द्र-जालिकों के मस्तक में भी नहीं समाई होंगी।

सत्यका स्थान विचारसे ऊपर है, विचारका कार्य सत्यका ढूँढना है। सत्यके लिये हमोगोंको कार्य करना और जीवन धारण करना चाहिये और इसके लिये समय पड़ने पर प्राण दे देनेमें भी नहीं हिचकना चाहिये।

सत्य, सत्य कार्य करने के लिये सीखो; क्योंकि मनुष्यका प्रधान कर्त्तव्य यही है। इसमें सन्देह नहीं, कि विचार से भूल हो जाती है, परन्तु यह भी सोचना चाहिये कि उस भूल की जाँच भी विचार से ही हो सकती है।

हम लोगों का सिद्धान्त वर्त्तमान में केवल सामयिक ही हो सकता है। विज्ञान की वृद्धि अद्भुत रूप से हो रही है और इसके द्वारा आश्चर्यजनक बाते हमारे बुद्धि भण्डार को बढ़ा रही हैं, परन्तु ये वृद्धियाँ केवल अनुभव-लब्ध और पारिभाषिक ही है और भविष्य-आविष्कारों के लिये आधार ठीक कर रही है। हम लोगों के लिये अनन्त विद्या का भण्डार पड़ा है; जीवन तथा संसार (जिसमें हम लोग रहते हैं) के सत्य सिद्धान्त तक पहुँचने के पूर्व बहुत कुछ सीखना और छोड़ना पड़ेगा।

खैर, हमलोग शान्तिकी इच्छा करें, परन्तु अपने कर्म्म-पथ से हटकर इसकी इच्छा भी मूढ़तामय है।

पुरातन समय में, लोग ऐसे वनोंमें जाकर शान्तिके लिये उद्योग करते थे, जहाँ संसार की तृष्णा, उत्तरदायित्व कर्म्म

इत्यादि का पहुँचना कठिन था, परन्तु वे क्या सफल मनोरथ होते थे? मुझे संशय है। सरल तथा उपयोगी कर्म स्वयं ही अनेक लिप्साओंके बाधक हैं। और भी, पारिवारिक जीवन, प्रतिदिन परोपकार करने का जीवन, दूसरे के दुःखको दूर करने तथा दूसरे को सहायता करने का जीवन, स्वयमेव ही एक आनन्दमय जीवन है।

मेरा विश्वास है, कि जो मनुष्य इष्ट मित्र, परिवारसे तथा अपने देशको ओर के कर्त्तव्योंसे मुँह मोड़कर जङ्गल में उस वस्तु के लिये, जिसका पाना दुस्तर है, वृथाही प्रयास करता है, वह मूर्ख के सिवा कुछ नहीं।

कर्म्मोद्युक्त जीवनके लिये, चिन्ता तथा उत्कण्ठा से पूर्ण जीवन व्यतीत करने को आवश्यकता नहीं। यह पूछना वृथा है कि, वनमें वा परिवार के बीचके जीवन में सुख और शान्ति है? परन्तु आप यह पूँछ सकते हैं, कि किस जीवन से दूसरों का उपकार हो सकता है।

हम लोगोंका प्रधान कर्त्तव्य, इस संसार में, यही है कि काजल की कोठरी रूप संसार में रहकर भी, हम लोग इसके काजल की रेखा से बचे रहैं।

यह बात कठिन अवश्य है, परन्तु असम्भव कदापि नहीं।

हम लोगों में बहुत से निस्सन्देह हल जोतने वा कारीगरी करने के योग्य हैं; परन्तु इससे क्या? जीवन के सबसे बुरे समय में भी मनुष्य चित्त को शान्त रख सकता है।

उन मनुष्यों के लिये, जो यह जानते है कि जीवन कैसे उपयोगी बनाया जा सकता है, यह मनुष्य-जीवन प्रतिदिन बहुमूल्य और आश्चर्यजनक होता जाता है।

कार्य एकदम लगातार होना ठीक नहीं। मनुष्य को साल भर में कुछ दिनों के लिये, और रोज़ कुछ घण्टोके लिये, विश्राम करना आवश्यक है। प्रतिदिन, मनुष्य को कुछ समय आत्म-परीक्षाके लिये अलग निकाल देना चाहिये, जिसमें हम विचार कर सकें, कि कौन सा कर्त्तव्य वा कौन सा अकर्त्तव्य हमने किया।

यदि मनुष्य इस मामूली नियम पर चले, तो अच्छी भूख और शान्ति पूर्वक नींद उसे, अवश्य, नसीब होगी।

हम लोगों में बहुतेरे ऐसे है, जो कामके बाद विश्राम करने तथा चित्तको एकाग्र करने के गुणो से परिचित नहीं। हम लोग अपने जीवनको आवश्यक, अनावश्यक कार्य्यों की खिचडी बना देते है। यहाँ तक कि, खेल कूद वग़ैर: जो केवल मन-बहलावकी चीज़ें है, उन्हें भी कार्य्य-बोझ बनाकर जीवन को वृथा कष्टमय कर देते है।

इसमें सशय नहीं, काम करना हमारा कर्त्तव्य है; परन्तु कार्य्य ही सम्पूर्ण कर्त्तव्योंका सारांश नहीं। मनुष्य को नित्य कार्य्यों के झगड़े से छुट्टी पाकर, कुछ समय, आत्म-चिन्तन के लिये अवश्य निकाल लेना चाहिये।

अँगरेज़ लोगोको देखिये, उनकी कार्य करनेकी परिपाटी

कैसी अच्छी है। छः दिन काम करने के बाद, एक दिन रविवारका विश्राम कैसा सुखप्रद है। रविवार को, हम लोगोंको पवित्र विचारों से अपना हृदय भर लेना चाहिये। कमसे कम एक दिन भी, अपने को सांसारिक झगड़ों से हटाकर, जगत् कर्त्ता के चरणोंको कांक्षा करनी, नहीं नहीं, उनमें तन्मय हो जाना ही, उचित है। इस दिनका विश्राम शान्त, दैविक तथा निर्लेप होना चाहिये। आजकी शान्ति अथाह, अनन्त समुद्र वा नील आकाश की नाईं होनी चाहिये।

यदि आप कहें, कि भला एक दिन काम नहीं करने से मज़दूरी कम हो जायगी वा हम ग़रीब हो जायँगे, तो इसका उत्तर आप इतिहास के पन्ने उलट कर देखें, कि सातों दिन काम करनेवाले, भारतीय मज़दूरों से, केवल छः दिन काम करनेवाले, अँगरेज़ मज़दूर क्या कुछ ग़रीब हैं? पाठक! आपका वह विश्राम का दिन वृथा नष्ट नहीं होता।

जब वाणिज्य बन्द रहता है, हल खेत में बिना काम के पड़ा रहता है; जब कि धन-भण्डारों की थैलियों की झनझनाहट नहीं सुनाई देती, वा पुतलीघरोंके फुफकारते हुए एञ्जिन धूआँ नहीं उगलते रहते, उस समय में, इन सबों से कहीं बढ़कर एक कार्य होता है। यह वह कार्य है, जिस से देश और जातियोंके धनका सामान अन्धाधुन्ध जुटाया जाता है। पाठक! अपने इस महान कार्य को क्या आप समझे? यह वह कार्य्य है, जिससे संसार-यन्त्रोंका नियंत्रित करनेवाला

महान मनुष्य, मस्तिष्क-यन्त्र के कल पुर्जे साफ़ सुथरे कर देता है और जिससे मनुष्य, दूसरे दिन, फिर नये उत्साह, नई उमङ्गके साथ, अपने कार्य्यों पर आ डटनेके योग्य हो जाता है।

हमने सुना है, हमारे बन्धुगणोंको कभी कभी करने-योग्य काम नहीं रहता। शोक है! उनका यह भ्रम है। हमारा सबसे बढ़कर कार्य्य, हमारा सबसे प्रधान कर्त्तव्य, आत्मोन्नति करना है। भला पाठक! इससे बढ़कर और काम आप क्या चाहते हैं? दिन रात उद्योग करते रहिये, तोभी यह गोरख-धन्धा खतम होने का नहीं।

हम लोग समझते हैं, कि किसी राजकुमारके शिक्षक होने वा किसी स्कूल के प्रधान अध्यापक होने से बढ़कर, उत्तरदायित्व से पूर्ण, कोई दूसरा कार्य्य नहीं, परन्तु मेरी मति तो यह है, कि अपने आपको शिक्षा और अपने आपको वश में रखना, सबसे जोखिम का कार्य्य संसार में है। इस विचार से, पाठक! हमारे विश्राम करनेका समय सबसे अ-मूल्य समय है।

भोजन के लिये कमाना तो दैहिक स्थिति के लिये अत्यन्त आवश्यक और हमारा कर्त्तव्य हैही, परन्तु उस अवस्था में, हममें और पशुओंमें थोड़ा ही अन्तर रह जाता है। क्योंकि वे भी खाने के लिये हाथ पैर डुलाते हैं। हम में विशेषता केवल इतनी ही है, कि हमें परमेश्वर ने हिताहित विचारने की बुद्धि दी है। इतने पर भी सुनने में आता है, कि अमुक

बाबू अब नौकरी छोड़कर बेकार हैं । पाठक ! वही बेकार समय, यदि सच पूछिये तो, जीवन के दो मुख्य उद्देश्यों को पूरा करने का सावकाश है । एक तो पर-आनन्दवर्द्धन और दूसरा आत्म-संशोधन ।

बुद्धि ।
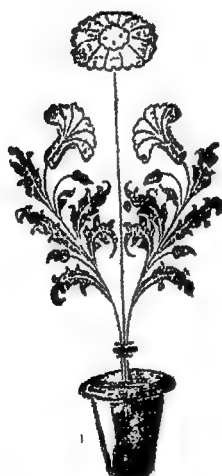
यह मनुष्य-शरीर आत्माका मन्दिर मात्र है। आत्मा केवल शरीर से ही प्रधान नहीं, वरन् संसार से भी महान है, परन्तु आत्मा की श्रेष्ठता जाननेके कारण, शरीरको निकृष्ट जानना ठीक नहीं, क्योंकि आत्मा और शरीर दोनों मिलकर मनुष्य नाम के बोधक होते हैं।

मनुष्य संज्ञा भी कैसी मनोरम है। परमेश्वर की यह कैसी कीर्त्ति है? अहा! इसमें कैसा विवेक है, इसकी कार्य्य-क्षमता कैसी अनन्त है। आकार प्रकार इसके कैसे उत्कृष्ट और भुवन-मोहन हैं। कार्य्य-सम्पादन इसके कैसे स्वर्गीय हैं। बुद्धि कैसी देवताओंसे तुलना करने योग्य है।

निस्सन्देह मनुष्य-तन पाना एक महान अधिकार है। परन्तु यदि इस शरीर के परिमाणुओं को विलग विलग करके देखे, तो यह निरा रासायनिक सम्मेलनसे बढ़कर कुछ नहीं बोध होता। यदि मनुष्यके काम करने का औसत निकालो, तो इसके कार्य्य केवल दो सेर कोयले से चलनेवाले यन्त्र के ही तुल्य ज्ञात होंगे। अनेक लेखकों ने मनुष्य-शरीर का एक गर्हणीय चित्र खींचा है। मनुष्य का अल्पायु होना लेखकों

की एक पुरानी गाथा है, जिसे वे सदा गाया करते हैं। कोई कोई तो इसके अचिर स्थायित्व का वर्णन करते करते यहाँ तक चले गये हैं, कि मनुष्य-जीवन "पर्वत के ऊपर के ओस-बिन्दु, बढ़ेली नदीके फेन वा पानी के बुलबुलों से भी अल्प स्थायी हैं। ज़रा बाइबलकी जीवन की उपमाओं को सुनें। कहीं तो मनुष्य-जीवन को स्वप्न, कहीं निद्रा, कहीं छाया मात्र, कहीं वाष्प, कहीं ज़मीन परका ढरका जल और कहीं कही हुई कहानी से मिला दिया है।

जीवन केवल न्यूनही नहीं, वरन दूषित भी वर्णित है। महात्मा बुद्ध को तो मनुष्य-जीवन मानो दुःखका टोकरा ही बोध होता था। आप कहते हैं, कि मनुष्य-जीवन दुःखमय है; जन्मसे दुःख, वृद्ध अवस्था में दुःख, रोग होने में दुःख, अप्रिय से मिलने में दुःख, प्रिय से वियोगमें दुःख, संक्षेपमें, मनुष्य-स्थिति ही दुःख है।

बड़े आश्चर्य की बात है, कि जो लोग जीवन को इतना दुःखमय बतलाते हैं, वे ही महात्मा मृत्यु से न जाने इतना क्यों भय खाते है? वे सदा अपने को यह सोच सोचकर उद्विग्न किये रहते हैं कि "कालकी तीखी कमानसे बूढ़ा बचा न जवान।"

वे यह कहकर अपना पृष्टपोषण करते हैं, कि अजी! मैं मृत्यु से थोड़े ही डरता हूँ, मैं तो डरता हूँ उससे जो मृत्यु के बाद होता है। न मालुम, मृत्यु के बाद कैसे देश में हम लोग

पहुँचेंगे, उस देशकी सीमा लाँघकर पुनः आज तक वहाँका समाचार लेकर कोई नहीं लौटा। यही विचार है, जिससे जीवनको बुरा कहनेवाले लोग उथल-पुथल हो जाते हैं।

मृत्यु के विषय में नाना मत-भेद हैं। कुछ लोग तो इच्छा करते हैं, कुछ लोग इसी में शान्ति ढूँढ़ते हैं, परन्तु यह तो वह विषय है जो, बिना माँगे, सब किसी को एक न एक दिन अवश्य मिलेगा। बहुत लोग मृत्यु-समय के दुःखोंसे थर्राते हैं परन्तु वृद्धावस्था की मृत्यु बहुधा दुःख-रहित होती है। बाज बाज़ अपने को यह कहकर ढाढ़स देते हैं, कि मृत्यु कोई वस्तु नहीं, जो कुछ मृत्यु के नाम से पुकारा जाता है वह वास्तव में अदल-बदल है। मृत्यु तो मनुष्य-तनसे स्वर्ग में, जो उसका उपकण्ठ मात्र है, जाने का द्वार है।

महात्मा सुकरात कहते हैं, कि यदि मृत्यु स्वर्ग जाने का द्वार न भी हो, तोभी यह एक ईश्वर का आशीर्वाद है।

मिल्टन का मत, मृत्यु के विषय में, मुझे पसन्द आता है। वह यह है, कि जीवन के दुःखमय झंझटोंसे छुटकारा पाने के लिये एकदम इस सुन्दर मनुष्य-जीवन को छोड़ देना कदापि सुख नहीं कहा जा सकता। अस्तु, जो कुछ हो, हमें मृत्यु का, महात्मा सुकरात की वीरता के साथ, सामना करना चाहिये, मृत्यु को हमे बुरा नहीं समझना चाहिये, वरन उसे स्वर्गारोहणकी सीढ़ी विचार कर उसका स्वागत करना ही उचित है।

पाठक! अब मैं प्रबन्धके मुख्य विषय की ओर झुकता हूँ।

मनुष्य के विषय में दो मत है (१) यह कि, मनुष्य देवताओं से कुछ नीचे है। (२) मनुष्य पशुओ से ऊपर है। दोनों मत एक दूसरे के प्रतिकूल वा असङ्गत नहीं हैं। ये दोनो दो मार्ग हैं और चुनाव के लिये एक का अवलम्ब करना अति उचित है। प्रत्येक मनुष्य जैसी इच्छा करे वैसाही भला या बुरा हो सकता है। हम लोग मनुष्य तथा अपने कर्म के सम्पूर्ण रूप से कर्त्ता धर्त्ता हैं। अपने को नीच, दुखी वा दुर्बल तथा महान, सुखी वा सबल बनाना अपने हाथ में है। मनुष्य-तन, माना कि एक महान अधिकार तो अवश्य है, परन्तु साथ ही साथ उतना ही उत्तरदायित्व-पूर्ण भी है। हम लोग अपनी आत्माको पवित्रसे पवित्र आश्रय पर पहुँचा सकते है वा निकृष्ट से निकृष्ट नरकमें ढकेल सकते है। यदि मनुष्य घृणित हो गया है, तो इसका एक मात्र कारण यह ही है, कि उसने अपनेको ऐसा कर दिया है, न कि वह घृणित होनेके लिये ही जन्मा है।

हम लोग बालकपनमें देवताओंसे कुछ नीचे रहकर, जीवन-यात्रा आरम्भ करते है। निःसन्देह, हमलोगोंमें निर्विकार परमात्माका एक अंश अवश्य है, जो सांसारिक प्रत्येक विषयोंसे भिन्न है। इसी परमात्माके अंशके विद्यमान रहनेके कारण, हम लोगोंको उपदेश दिया जाता है, कि तुम उन मनुष्योंका

सत्कार तथा आदर करो, जिन्होंने अपनेको उच्च आसनसे नीचे नहीं गिरा दिया है।

इसमें सन्देह नहीं, कि बालक पूर्णतया उन मनुष्योंके अधिकारमें है जिनके साथ वे रहते हैं। रक्षक चाहे, माता पिता हों वा गुरु हो, सबसे बढ़कर उनके कार्य्यों के उत्तरदायी है। बालकोंकी बुद्धि कोरे कागज़की नाईं है, जिसपर हम सब मन-माने अक्षर उगा सकते हैं, परन्तु यह भी सदा स्मरण रहे, कि जब एक बार उस कागजपर लिखा गया, तो फिर उस पर हरताल फेरना असम्भव है।

उदाहरण जो हम उनके सम्मुख रखते हैं, उनको सिख-लाई बातोंसे बढ चढकर नहीं तो, उनके तुल्य तो अवश्य है।

हम लोग अपने पिता वा गुरुके उतने ऋणी नहीं हैं, जितने उन भूत मनुष्योंके है, जो अब नहीं हैं।

मनुष्य देवताओं तथा पशुओंका एक विलक्षण सम्मिलन है। बहुतसे लोगोंने अपनेको देवताओं ही से नीचे नहीं, वरन पशुओंसे भी नीचे गिरा दिया है। आत्माको पवित्र रखनेके लिये, हमें शरीरको अवश्य स्वस्थ रखना चाहिये।

मै इतना जो कुछ कह गया, वह मनुष्य मात्रके लिये है, मनुष्य चाहे स्त्री हो वा पुरुष। पुरुषोंमे यदि बुद्धि प्रखर होती है, तो नारियोंमें आत्माकी स्वच्छता अधिक होती है।

नरके लिये जैसा बल है, नारियोंके लिये वैसी ही उनकी सुन्दरता है, परन्तु अन्य सद्गुणोंकी भाँति सुन्दरता भी हानिसे

ख़ाली नहीं है। स्त्री मात्र ही, यदि चाहें तो, सुन्दरी हो सकती हैं। यह कहनेकी बात है, कि स्त्रियोंकी सुन्दरता केवल बीस वर्ष तक ही रहती है। स्त्रियां, यदि चाहें तो, अपनी मनोहरता साठ वर्षकी अवस्था तक भी एक प्रकार ही रख सकती हैं। यदि नारी २० वर्षमें सुन्दरी है, तो यह क्योंकर कोई अनुमान कर सकता है, कि वह आगेके दिनोंमें सुन्दरी नहीं रहेगी।

प्रत्येक देशके लेखकोंने स्त्रियोकी बड़ाई बड़े ज़ोरोंसे की है। अपने ही घरको लीजिये, एक-वस्त्रा पाञ्चाली द्रौपदीको दुर्योधनने पकडकर भरी सभामें नंगी करना चाहा, परन्तु द्रौपदीके करुणास्वरसे, भगवान कृष्णने स्वयं उसके वस्त्रमें प्रवेश कर, उसकी लज्जाकी रक्षा की। दुर्योधन चीर खींचता गया, परन्तु उसे यही पता न चला कि "सारी मध्यनारी है कि नारी मध्य सारी है।"

स्त्रियोंकी प्रशंसा करते हुए, महात्मा सॉलोमनने कहा कि "नारी रत्नको क्या कोई अमूल्य खनिज पदार्थोंसे ख़रीद सकता है?" पत्नीको पति अपना सर्वस्व विश्वासरूप हीरा सौंप देता है और चोरी जानेके भयसे निःशंक रहता है। पत्नी अपने जीवन भर पतिकी हित-कामना करती रहती है। वह उसके गृह-कार्य्योंको करती हुई, उसकी ओरसे दीनोंको भिक्षा देती है। बल और पातिव्रत ही स्त्रीके कपड़े है और अनुकम्पा उसकी जिह्वा है। स्त्री कभी आलस्यकी रोटी नहीं तोड़ती; बल्कि पतिकी सेवा कर पेट भरती है।

फिर यदि स्त्रियोंमें मनुष्यके चरित्रको इस प्रकार ठीककर देनेका बल है, तो वे अबला क्यों कही जावें ?

प्रत्येक मनुष्य यदि चाहे तो महात्मा हो सकता है। सत्य पूछो तो, प्रत्येक मनुष्य महान ही है, यदि वह अपनेको नीच नहीं कर देवे। सुअवसर, अधिकार सब कुछ प्राप्त है, यदि सदुपयोग किया जाय, और नहीं तो अमृत ही गरल हो भक्षण कर जायगा। देशाधिप होनेसे आत्माधिप होना श्रेयस्कर है।

मनुष्य किन चीजोंसे बना है? मनुष्य अपनी पदवी, गृह, धन, वस्त्र इत्यादिसे मनुष्य होनेके योग्य नहीं, वरन अपने उच्च चरित्र से।

समयके परिवर्त्तनके साथ जीवन भी बदलता रहता है। लोग कहते हैं, कि बालकपन ही भावी जीवनका प्रभात है। परन्तु नहीं, मेरी मतिके अनुसार तो बालकपनसे ही जीवनको इस प्रकार बनाये रखना चाहिये, जिसमें, प्रतिदिन, एक न एक सद्गुण मरण पर्यन्त हम हमलोग सीखते रहें।

जीवन एक अपूर्व भूल-भूलैया है। हम लोग नहीं जानते, कि क्यों हमारा जन्म हुआ, कैसे हम संसारमें रहते हैं और कैसे और क्यों हम लोग मरते हैं।

प्रकृतिमें, मनुष्य स्वयं ही एक आश्चर्यजनक वस्तु है। वह नहीं जानता है, कि उसका शरीर कैसे बना है। उसमें बुद्धि कौन सी वस्तु है, और यह तो वह एक दम नहीं जानता कि,

शरीर और बुद्धिसे क्या सम्बन्ध है। आश्चर्य तो यह है, कि यह अज्ञता किसी संसारके अन्य विषयमे नहीं, वरन अपने आपमें है।

मनुष्य यद्यपि देवता है, तथापि पूर्ण रूपसे नहीं। देव-अंश तो मनुष्यमें है, परन्तु पार्थिव शरीरमें होनेके कारण वह देवता नहीं, वरन देवताका अवतार कहा जाता है।

लालसा ।
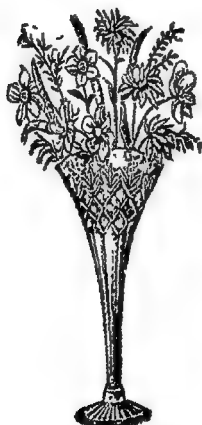
किसी विद्वानका गागरमें सागर-स्वरूप एक शब्दका उपदेश है "आकांक्षा करो।" निस्सन्देह, यह अत्युच्च उपदेश है। परन्तु यहां प्रश्न उठता है कि महाशय! आकांक्षा करूँ किस बातकी?

प्रत्येक पार्थिव वस्तुकी अभिलाषा, प्रत्येक मनुष्यके ऊपर रहनेकी लालसा, आकाश छूनेके समान है। भाइयो! लालसा तुम्हें इस बातकी करनी चाहिये, कि तुम अपने आप से ऊपर रहो। दूसरोंके ऊपर रहनेकी अभिलाषा छोड़ो, वरन उद्योग करो, कि दूसरोंके साथ रहकर उच्च अभिलाषा रखें।

बहुतेरे कहते हैं, "चलो जी, संसार मेरे विषयमें नीच ऊँच जो चाहे कहे, मैं कुत्तोंके भूँकनेकी पर्वाह थोड़े ही करता हूँ। मेरे जानते तो संसारकी आलोचना को यों तिरस्कार करनेवाले, वास्तवमें, संसारसे प्रशंसा पानेके योग्य ही नहीं है।

उच्चाकांक्षा करो, जिससे गिरते गिरते भी सामान्यजनसे तुम कुछ ऊपर ही रहो।

मनुष्य भूल नहीं करें—यह तो असम्भव है, परन्तु

भूलसे बचनेका उद्योग करना तो निःसन्देह सम्भव है। मेरे भाइयोंका विचार है, कि सुसमय आपसे आप उन्हें खोज निकालेगा, उन्हें सुअवसरको खोज निकालनेकी आवश्यकता नहीं। कैसी मूर्खता है।

अस्तु, हमारी लालसा क्या होनी चाहिये? हम लोगोंको दूसरों का तथा अपने आपका विचार करना आवश्यक है। हमलोगोंको एक बृहत् साम्राज्यके नागरिककी नाईं, हृदयसे, "यूनानी शपथ" का स्मरण रखना चाहिये। यूनानी प्रजा जीवनमें प्रविष्ट होनेके पहले शपथ लेते थे, कि मैं युद्ध-क्षेत्रमें अपने सहयोगियोंको छोड़कर कदापि न भागूँगा। मैं अपने पवित्र धर्म्म (Shield) को कदापि दूषित नहीं करूँगा, अपने देश, अपने धर्म्म-पीठोंके लिये ससहाय वा असहाय घोर युद्ध करूँगा। मैं अपने देशको उस अवस्थासे कुछ उन्नत अवश्य छोड़ जाऊँगा, जिस अवस्थामें यह मुझे सौंपा जायगा।

निःसन्देह, हमलोगोंको अपने देशी तथा समकालीनोंके सम्मानका इच्छुक होना चाहिये; परन्तु ख्यातिकी लालसा प्रलोभ तथा भयास्पद है।

जैसा मैंने अभी कहा है, कि ख्याति की अत्यन्त अभिलाषा भी दूर ही रखनी चाहिये; क्योंकि लालसाओंको शिरमौर्य्य 'स्वाधीनता' का इससे नाश हो जाता है। अभिलषित वस्तुओंमें 'प्रभुता' का भी नहीं रहना ठीक ही है; क्योंकि प्रभुतासे भी समय समय पर हानि हो जाती है।

हम लोगोंको निम्न लिखित दूषणोंसे बचा रहना चाहिये,—मस्तिष्ककी व्यग्रता, इन्द्रिय लोलुपता, प्रबल मनो-विकृति, आसक्ति, क्रोध और मोह।

बहुतेरे लोग धनवानों और बलवानोंसे ईर्षा करते है, उनका विचार है कि वे भाग्यवान हैं, क्योंकि वे तो जो इच्छा करते है, खरीद लेते है और वे स्वेच्छाचारी है। परन्तु मित्रो! स्मरण रखो, कि भाग्यवान होनेसे सुखी होना आव-श्यक नहीं। अपने उद्योगसे ऊपरको उठनेमें जो सन्तोष है, वह स्वभावतः ऊपर उठे रहनेमें कदापि नही। यदि हम लोगोंको संसारमें कुछ इच्छा नही रहती वा आकांक्षा करने की वस्तु सम्मुख न होती, तो जीवनमें अनुराग वा कुछ भी अभिरुचि नहीं रह जाती।

धनवानोंको निस्सन्देह अनेक लाभ है, परन्तु यह लाभ उन्हें महँगे खरीदने पडते है। उन्हे लालसा करनेको तो कुछ भी नहीं रहा, परन्तु भय करनेको बहुत कुछ है।

धनवानोंको लाभ क्या है? उनका अमूल्य समय झूठे बखेडोंमें, अनेक बार वस्त्र बदलनेमें, दर्बारमें जाकर राजाके साथ वृथा खुशामद करने करानेमें, योंही नष्ट हो जाता है। उन्हें केवल खुशामदियोंसे ही बचनेका उद्योग नही करना पडता, वरन् उनको चिन्ता और उद्विग्नता भी अपरिमेय है।

उस मस्तकको जिसपर मुकुट रखा जाता है, सदा ही कटारकी तीक्ष्ण धार सहनेके लिये भी प्रस्तुत रहना पडता है।

धनवानोंके लिये भाँति भाँति की लिप्साओंका द्वार खुला पड़ा है, परन्तु यह बात निर्धनोंके लिये नहीं है। पाठक! इतिहासको खोल देखें, कि कितने नृपतिगण जो आजतक राज्यच्युत वा प्राणहीन किये गये हैं, उन्होंने अपने निजके दोषके कारण इतना दुःख उठाया है। अधिकांश को देखो तो निरपराध ही निकलेंगे।

हँसी आती है। एक बार,किसी राजाने एक विद्वानके पास, अपने राजकुमारोंके पढ़ानेके विषयमें, कुछ सम्मति लेनेको, पत्र लिखा। उत्तरमें विद्वानने पत्र इस प्रकार आरम्भ किया,—"राजन्, यदि मुझे जन्मसे ही राजकुमार होनेका दुर्भाग्य होता तो ··

पाठकोंने विद्वानोंका विचार धनवानोंके विषयमें सुना न?

बन्दीगृहमें स्वच्छ आत्मासे युक्त होकर शान्तचित्त रहना लाख दर्जे उत्तम है; परन्तु चिन्तित चित्त और उद्विग्न हृदयसे राजसिंहासन पर भी बैठना दुःखप्रद है। यह दुःख और भी अधिक बोध होता है, यदि वह राजसिंहासन बल वा कपटसे प्राप्त किया गया हो।

कहावत है, कि पाषाण-प्राचीर वा लोह-निर्मित गृह मनुष्यको बन्दीगृह नहीं बना सकता; क्योंकि स्वच्छचेता वहाँ भी पवित्राश्रम बना लेता है। यदि मेरे प्रेममें स्वाधीनता और आत्मामें स्वतन्त्रता हो, तो मेरे ऐसे पदको केवल देवगण ही पा सकते हैं।

यदि उन्नति चिन्तायुक्त है, तो अधःपतन भी दुःखपूर्ण है, इसीसे बहुतेरे धननाश होनेके पहले, अपना ही अस्तित्व मिटा देते हैं।

जो शिखरपर है, उसीको गिरनेका भी भय है। जो भूमि पर है, उसका गिरना ही कैसा?

बहुतेरे मनुष्योंने अपनेको भाग्यशील होनेके कारण नष्ट कर दिया है। वे ही यदि सामान्य जनकी गिनती में होते, तो अपना कार्य्य बडी खूबी और सुन्दरता से समाप्त करते।

दूसरोंपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये, जो अपने आपकी बागडोर ढीली कर देते है, वे मूर्ख हैं। मुझे यह अनोखी बात मालुम होती है, कि मुख्य बल प्राप्तिके लिये स्वाधीनता खो देवें।

धन, बल, और सम्मान मनुष्योंको जीवनके अनेक सत्य आशीर्वादोंसे वञ्चित रखता है।

जिन मनुष्योंकी लालसा बल-प्राप्ति है, उन्हें शान्तिमय जीवनकी आशा छोडनी चाहिये, और वे जो शान्तिमय जीवन बिताया चाहते हैं, वे बल-प्राप्ति की आशा छोड़ें। संसार में सुख्याति प्राप्त करनेके लिये कठिन परिश्रम अपेक्षित है और सुनाम के लिये उतना ही कष्ट, परन्तु स्मरण रहे, कि साफल्य के लिये अत्यन्त उद्विग्नता अकसर उस कार्यको ही नष्ट कर देती है। संक्षेपतः, प्रभुताकी आकांक्षा और उसके लिये उद्योग कदापि नहीं करना चाहिये, यदि तुम बुद्धिमान और उद्योग-

शील होगी तो प्रभुता स्वयं ही, तुम्हारे अनिच्छा करते हुए भी, तुम्हारी पदानुसारिणी होगी। भाग्यरूप बालूकी भीत पर खड़े होने से, सद्‌गुण के कठिन पाषाण पर आश्रय लेना बुद्धिमानी है।

सफलताके निमित्त, प्रायः सब विषयोंमें कठिन परिश्रम अपेक्षित है। हठात् परिश्रम वा एकदिन के जी-तोड़ उद्योग से यह प्राप्त होनेको नहीं। शान्त, स्थिर तथा एकाग्र उद्योग उन्नति की आवश्यक सीढ़ी है। मित्रो! हिमालयके शिखर पर चढ़नेवाला, यदि दृढ़ और निश्चित पद से नहीं बढ़े तो, क्या अपने अभिलषित स्थान पर पहुँच सकता है? मेरे जानते कदापि नहीं।

धैर्य, सिद्धिका गुप्त मन्त्र है। यदि तुम अपने बच्चोंके लिये धन और उच्चस्थिति नहीं छोड़ सकते, तो उनके लिये अपनी सुख्याति तो अवश्य छोड़ सकते हो।

अतः, यदि मनुष्य वक्ता वा वीर नहीं हो सकता, तो कमसे कम न्यायवान, उदार, सज्जन तथा संयमशील तो अवश्य हो सकता है; फिर इससे अधिक क्या?

पिता माता अपनी सन्तति के लिये अपनी सुकीर्त्ति तथा अपने गुणोंकी ख्यातिसे बढ़कर और कोई उत्तम सम्पत्ति क्या छोड़ सकते हैं?

अपने वंशकी समुज्वल कीर्तिमें कालिमा लगानेसे बढ़कर, सन्तानके लिये और कोई नीच कर्म क्या हो सकता है?

मनुष्य कितना ही निर्धन वा निर्गुण क्यों न हो, यदि अपने जीवनमें उद्योग करेगा तो संसारको कुछ न कुछ उन्नति के पथ पर ढकेलेहीगा। उसी प्रकार बहुतेरे धनी वा उच्चपद-स्थायी जो प्रति दिन नीच कर्मो ही में लिप्त रहते है, इतने मान्य होने पर भी संसार का अपकार ही करते है। यह अपने नीच ऊँच कर्म्मका फल है। सार्वलौकिक कार्य्य करना किसीकी बपौती नहीं है।

पुरातन समयका विश्वास है, कि भूत युग ही सतयुग था। यह विश्वास प्रत्यक्षरूप से तथा डंकेकी चोट कह रहा है, कि पुरातन समयमें प्रवृत्ति का ज्ञान कदापि नहीं था। मेरा विश्वास है, कि सतयुग अभी आया नहीं, वह भविष्यके लिये रख छोडा गया है। विज्ञानकी उन्नति गत सदीमें केवल विस्म-योत्पादक हुई है।

विज्ञानने हमें तोल लेना और नाप लेना ही नहीं सिख-लाया है, वरन् नक्षत्रोंको विभक्त करने, पृथ्वीके भीतर तथा समुद्रके गर्भतलको देखलेने, पर्वतोंके क्रमशः समुत्थान को पर-खने तथा नदियोंके किसी एक दिशामें बहनेका का कारण जाननेके योग्य भी बना दिया है।

विज्ञानने मार्ग-रहित समुद्र पर मार्ग बतला दिया है, इस के बलसे मार्गकी दूरी क्षणमात्रमें समाप्त हो जाती है, इसे प्रकाश मिलता है, हमारे घोर दुःखों और व्याधियोंकी औष-धियाँ निकल पडी है। इतना ही क्यो, इससे हमारा जीवन

दीर्घ और अस्तित्व अनुरागमय हो गया है। विज्ञानसे हम त्रिकाल-दर्शी होनेके योग्य हो गये हैं।

गत शताब्दी अत्यन्त चित्त-रञ्जक, अनपेक्षित तथा अद्भुत आविष्कारोंसे पूर्ण है। इसी सदीमें रेलवे, तार, छायाचित्र, गैस, पेटरोलियम, विद्युत-प्रकाश, रञ्जन किरणें, रेडियम टेलीफोन, फोनोग्राफ, डारविनका अपूर्व आविष्कार, भूगर्भ-शास्त्र, क्लोरोफॉर्म इत्यादि अनेक आश्चर्यमय आविष्कार हुए हैं। ऐसे आविष्कार, क्या पाठक! पूर्वकी किसी शताब्दीमें बता सकते हैं?

प्राकृतिक विषयोंके अतिरिक्त जन-विचारमें भी अनुपम उन्नति हुई है। इसी शताब्दीको हमलोग कर-रहित वाणिज्य तथा विद्याकी गुरुताकी भी जन्मदायिनी समझते हैं।

योरोप इत्यादि पाश्चात्य देशोंमें, भूत प्रेतोंपर जो बड़े ज़ोरका विश्वास था, वह इसी शताब्दीमें लोप हो गया।

लोग कहते हैं, कि काव्यके सम्मुख विज्ञान क्या मनोरञ्जक होगा? पाठक! इसे आप स्वयं ही विचार लेवें, कि भूगर्भ-विज्ञानकी अद्भुत बातें जिस प्रकार हमारे हृदयको खींच रही हैं, उस प्रकार क्या कालिदास वा होमर इत्यादिके काव्य खींच सकते हैं?

इन विषयोंके नेत्रके सम्मुख रहते, क्या मेरा यह विश्वास कि, भविष्य ही सत्ययुग होगा, झूठा वा भ्रम मात्र है? यह विश्वास, भ्रम उस अवस्थामें कहा जाता; जब संसार के प्रत्येक

ज्ञान से हम अवगत हो गये होते, परन्तु यह तो है नहीं। क्योंकि हमलोग जो कुछ अभी जानते है, वह जो कुछ नहीं जानते, उसका सहस्रांश भी नहीं। प्रकृति में ऐसी एक भी वस्तु नहीं है, जिसकी उपादेयता का गुण हम लोगोंको पूर्ण रूपसे ज्ञात हो। हम लोग ऐसी ऐसी शक्तियों से घिरे है, कि जिनका जानना तो दूर रहे, अभी उनकी छाया मात्र भी हमने नहीं पायी है।

अन्य बातोंको छोड़कर तीन ऐसे कारण हैं, जो हमें भविष्यकी ओर आशापूर्ण नेत्रों से देखनेको प्रेरित कर रहे हैं। प्रथम तो हमारे बुद्धि-भण्डारके बढ़ानेवाले यन्त्रोंकी अविरत उन्नति, दूसरे कार्य्यकरनेवालों की प्रवृद्ध संख्या, तीसरे विज्ञान-सूर्य्यके उदय होने तथा हमारे भ्रमान्धकार के नाश होनेके कारण, भविष्य में अधिकाधिक उन्नति की सम्भावना, प्रत्येक अविष्कार एक अन्य नूतन आविष्कारके लिये स्थान और आधार ठीक ठीक करता है।

हमारे बच्चे अब अपना शिक्षा-क्रम महान और विज्ञ शिक्षकों तथा सुअवसरमें जारी रखेंगे। मैं सच्चे हृदय से विश्वास करता हूँ और आशीर्वाद करता हूँ, कि मेरे प्रेयस और आन्तरिक मित्र तथा बन्धु विज्ञान-प्राप्ति में योग्य भाग लेंगे और मनुष्य ज्ञानके भण्डारकी उन्नति में योग देंगे।

मित्रो! राष्ट्र की उन्नति किसे कहते है? उन्नति, व्यापार की व कल पुर्जे, रेलवे, तार, इत्यादिकी उन्नति को नहीं कहते,

वरन् राष्ट्र की सच्ची उन्नति उसके प्रत्येक अवयवों को सच्चे नागरिक सुस्वस्थ और सज्जन होने को ही कहते हैं। बस, इससे बढ़कर और लालसा नहीं हो सकती, कि हम सब अपने जीवनके उद्योग से राष्ट्रकी उन्नति में एक अंश जोड़ देवें।

पाठको! आप भी इसी की लालसा, आकाङ्क्षा वा अभिलाषा करें।

सन्तोष ।

संसारके प्रत्येक विषयमें मनुष्य अपना असन्तोष प्रकट कर सकता है। सूर्य्य कितना ही हर्ष-प्रद क्यों न हो, हमलोग कह सकते हैं, कि सूर्य्य इतना देदीप्यमान है इस कारण, इस को एक ओर अँधियाला अवश्य होगा। चलो, चमकमें भी अँधियाली की बात असन्तोषियों के लिये दुःखी होनेको बहुत हो गयी। ठीक है, दुःख और सुख का ज्वार सदा मनुष्यों को इधर उधर भटकाया करता है, परन्तु स्मरण रहे, कि यह कहना कि परमेश्वर ने प्रत्येक सुख दुःखका तुल्य भाग लगा छोड़ा है, अज्ञातज्ञतासे खाली नहीं है।

एक विद्वानने एक दिन किसी एक भोजके लिये तय्यारी करते देखकर कहा था, कि क्या प्रत्येक दिन सज्जनों के लिये भोज नहीं है? अवश्य है और भारी भोज है। केवल यदि मनुष्य पण्डित हो और उस भोज को भोगने-योग्य हो।

हम लोगों का यह ससार एक पवित्र और ईश्वरीय मन्दिर है, जिसमें मनुष्य जन्मसे ही रखा गया है। किस लिये? जिसमें वह, केवल कृत्रिम वस्तुओंको देखकर मणीत रंग विरंगी स्वाभाविक वस्तुएं, जैसे सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, नदियाँ जो सुन्दर

मधुर जलसे लबलबा रही है और पृथिवी जो अपने रससे बन-पादपों को हराभरा रखती है, देखे और उसका कृतज्ञ होवे।

अब हमलोगों ने देख लिया, कि जीवन प्राकृतिक सौन्दर्य को देखनेके लिये ही है; तो फिर हम लोग क्यों संतुष्ट और सुखी न होवें ? परन्तु मनुष्य न जाने क्यों, देवदत्त भोजको अवज्ञा, दिनरात दुःखी और उदासीन रहकर, किया करते हैं ? शोक है ! वे दूसरों के उपदेश पर भी कान नहीं देते और देवें ही क्यों ? उन्हें तो अपनी दुःख की गठरी उतारते मोह होता है। वे भविष्यके लिये आशा करके, सुखी जीवन बिताना स्वीकार कब करते हैं ?

मैं ऐसे महाशयोंसे पूछता हूँ, कि यदि आपके जीवन में सुख ही नहीं तो फिर आप मृत्यु के दुःखसे घबराते क्यों हैं ? आजतक जिसने मानव देह पायी, किसीने भी मृत्यु की इच्छा तो शायद नहीं की होगी।

हमलोग पुस्तकोंमें ऐसी ऐसी बिना सिर पैर की शिकायतें बहुतायतसे देखते हैं। किसी ने कहा है, कि संसार क्या है मानो चिन्ता, दुःख, शोकका प्रधान स्थान है। इसमें जीवन धारण करना मानो दुःखका जीना है।

जब दूसरे को आप कर्ज देते हैं वा अपने सुखके लिये रुपये उड़ाते हैं, तब तो यह एक उत्तम स्थान बोध होता है, परन्तु जब माँगना वा हाथकी तङ्गी सामने आती है, तो फिर इस संसार से बढ़कर दुःखमय स्थान ढूँढ़े नहीं मिलता।

एक पाश्चात्य विद्वानका मत है, कि युवावस्था प्रमादपूर्ण, अधेड़पन रोटीके लिये अविरत परिश्रम-पूर्ण और वृद्धावस्था क्षतकार्यों पर शोकपूर्ण जीवन है। सामान्य विश्वास है, कि बालकपन सरल और हर्षमयी अवस्था है, परन्तु अवस्थाकी वृद्धिके साथही साथ दु:खकी भी वृद्धि होती जाती है। युवावस्था और वृद्धावस्था दोनो एक दूसरेके प्रतिकूल हैं, क्योंकि एक सुखमयी, दूसरी दु:खमयी, एक रस पूर्ण, दूसरी नीरस।

शेक्सपियर वृद्धावस्था को घृणाकी दृष्टिसे देखता है। मुझे मैकवेथका एक वचन स्मरण आता है, जिसमें उसने कहा है कि मेरे जीवनका पतझड़ आ गया। मैं, सम्मान, प्रेम, मित्र इत्यादिकी जो इस अवस्थाके आवश्यक सहायक हैं, आशा नहीं करता वरन उसके स्थानमें गाली और दुतकार ही की आशा करता हूँ।

पाठक! आप शेक्सपियरके मैकवेथके इस कथन पर नहीं चले जाएँ और स्मरण रखें, कि मनुष्य तो अपने किये का फल भोगता है। मैकवेथ नाटक के पढ़नेवाले यह जानते होंगे, कि मैकवेथने यह अवस्था क्षतकार्य्यों के कारण ही दु:खमयी बना दी थी।

इँगलैण्डके प्रधान कवि बैरन (Byron) ने भी वृद्धावस्था से घृणा की है; परन्तु मैं यहाँ पर यह कहे बिना नहीं रह सकता, कि इनकी इन्द्रिय लोलुपता ही इनके भी भय और घृणाका कारण है।

जीवनकी यह अवस्था वास्तवमें सुखसे भरी है, परन्तु शोक है कि मनुष्य अपने यौवन-मदमें अनेक उत्कर्ष गुणोंका ह्रास कर देते है।

अस्तु, कुछ साधारण मनुष्यों का यह मत है, कि बाल और वृद्धावस्था दो ही सुखके समय हैं। एक इनमें से सरलता, दूसरी विवेक की अवस्था है। बालकपनका सुख दूसरों पर, परन्तु वृद्धावस्था का सुख अपने आप पर निर्भर है।

बालकपन स्वतन्त्र और शोक चिन्तासे शून्य होना चाहिये। एक कविने इस पनको कैसी खूबीसे वसन्तकालसे मिलाया है। पाठक! उपमाका सौन्दर्य देखें—वसन्त वर्षका बालकपन है और बालकपन जीवनका वसन्त है। निसन्देह, अनुरागिनी माता तथा पुत्रवत्सल पिताकी रक्षामें बालक आनन्दमय जीवन बिताता है, परन्तु उस बालकके आनन्दको पूर्वोक्त नहीं पा सकता, जिसे महान लालसा और आशा है तथा जो ईश्वरीय संसारको पूज्यभाव से देखता है और अपने जीवनको एक सत्य जीवन करनेकी इच्छा करता है।

इससे भी अधिक उस मनुष्यका आनन्द है जो सबल है; जिसने अपने जीवनकी आपत्तियोंको उतना अवकाश माना है, जिसके दुःख उसको चेतावनी है इत्यादि।

पाठक! जीवनका वास्तविक आनन्दमय समय वृद्धपन है, क्योंकि यदि इस पन ने शरीरकी कुछ सुन्दरताको ले लिया है, तो अन्य सुन्दरताएँ सामने ला रखी हैं। जैसे चारों ओर

से किलोल करनेके लिये बच्चोंका समूह, अपना कार्य समाप्त हो जाने के कारण, आत्म-अध्ययन तथा परोपकार करनेके लिये समय। यदि हम इस योग्य हो तो इस अवस्थामें सम्मान, मित्रोंका समूह, इत्यादि सब कुछ हमें मिल सकता है।

सुख तथा आनन्द तो अवश्य ही प्राप्त हो, यदि हमारी अन्तरात्माको इतना भी धैर्य हो, कि हमने युवापनमें किसीके अपकार करनेके बदले भाँति भौतिक उद्योगसे अपने देशको तथा अपने भाइयोंको उन्नति में कुछ भाग दिया है।

कोई कहे कि मृत्युके पहुँचनेका समय वृद्धावस्था ही है, तो फिर यह अवस्था आनन्दमयी क्योंकर हो सकती है ?, तो यह कोई दलील नहीं है, मृत्यु भी अनेक आशीर्वादोंको देनेवाली है, केवल यदि हम लोगोंने अपने ही कुकर्म्मों के द्वारा उनका मार्ग बन्द न कर दिया हो। इसमें सन्देह नहीं, कि हम लोग समयको तन पर झुर्रियाँ डालनेसे नहीं रोक सकते, परन्तु चिन्ताको हमलोग अवश्य मस्तिष्कमें झुर्रियाँ डालनेसे रोक सकते है। और सच तो यह है, कि तनको सिकुडनोंसे कुछ होनेका नहीं, यदि बुद्धि सिकुडन रहित हो।

हमलोग आशा कर सकते है, कि हमारा जीवन एक दम आनन्दमय होवे।

हमारी चिन्ता हमारे सुखोंसे अचिरस्थायी है। आपने क्या यह कहावत नहीं सुनी कि "दुःख सुख दोनोको रात काट

हो जाती है।" इन सब कारणोंसे हमें कदापि असन्तुष्ट न होना चाहिये। केवल इतनाही देखना चाहिये, कि हम लोग अपने सुख दुःखोंको सब प्रकार हँसते हुए वा प्रसन्नतासे स्वीकार करें।

जीवनरूप वस्त्रमें सुख दुःख दोनों प्रकारकी बिनावटें है, प्रत्येक मनुष्यको चिन्ता और शोक है, परन्तु मनुष्य उन सुखों के लिये तो तनिक भी ईश्वर का कृतज्ञ नहीं होता, जिनसे वह प्रतिदिन और प्रति घण्टे घिरा रहता है।

अपने जीवनके लिये ईश्वरका कृतज्ञ होते समय, मनुष्यको चाहिये कि अपने दुःखोंको भी तोले और देखे, कि कितने दुःख ईश्वर-प्रदत्त है और कितने दुःख मनुष्य अपने असंयम और अपने दोषसे अपने सिर उठा लेता है। यह हिसाब लगा कर देखने से हमारी कृतज्ञता ईश्वरकी ओर और अधिका-धिक होगी, क्योंकि दुःखों का बड़ा भाग हमारा ही दोष है!

यदि हम लोग उन दुःखोंको भी जो हमारी थोड़ी चतु-रता और धैर्यके कारण दूर हो जाते हैं और उन दुःखोंको जो केवल विचार मात्र में ही है, वास्तवमें नहीं, वा वे दुःख जो कष्ट के मिस अवकाश है, घटा लेवें, तो हमलोग तत्काल ईश्वरकी कृपाका परिचय पा जायँगे, कि जितना उसने आनन्द दिया है उसका एक अंश भी दुःख नहीं देता।

मै जोर देकर कह सकता हूँ, कि मनुष्य काल्पनिक दुःखोंसे ही अधिक दुःखी रहता है। ये दुःख यदि हमलोग

केवल थोड़ा भी विवेक खर्च करें, तो तत्काल दूर हो जा सकते हैं।

पाठक आप क्या नहीं जानते, कि सूर्य्यके उज्वल प्रकाशमें मनुष्यको अपनी ही छाया अन्धकारका काम करती है? जीवन में भी उंजेला और अँधियाला दिन रातकी नाईं आता ही जाता रहता है। कभी तो दोनों एक ही समय में वर्त्तमान देखे जाते हैं। हमारी विषम स्थितिमें कुछ भला और कुछ बुरा होता रहता है। आनन्द, शोक, उन्नति, चिन्ता, गृहमें शान्ति, बाहर कलह, वा गृहमें कलह, बाहर शान्ति, स्वास्थ्य, निर्धनता, धन, कष्ट इत्यादि बारी बारीसे आया जाया करते हैं। कभी ये सब इकट्ठे होकर ही आ जाते हैं।

पाठक! कुछ शब्दोंमें बस यही स्मरण रखें, कि जिस विषय पर हम अधिक विचार किया करेंगे, वही होगा भी। दुःख पर ही दिन रात सोच कर देखनेसे जीवन दुःखमय और सुख पर देखनेसे सुखमय हो जाता है। दुःख सुख विचाराधीन है।

कहावत है, कि कोई मूर्ख ऐसा नहीं है जो सुखी हो और कोई पण्डित ऐसा नहीं जो दुःखी हो।

संसारमें बहुतेरे ऐसे मनुष्य हैं, जो प्रसन्न होना जानते ही नहीं। वे कहते है, कि हमें कुटी नहीं चाहिये, क्योंकि यह तो मरुभूमि सी है। कार्य्य भी नहीं चाहिये, क्योंकि यह महा विषम है। ऐसे मनुष्योंसे मेरा यह कहना है, कि

यदि वे सुख और शान्ति चाहते हैं, तो अपनी इच्छासे अनु-कूल कार्य्य न खोजें, बल्कि जो सम्मुख आ जाय उसीको करें।

कष्ट पर रोनेसे कष्ट नहीं रुक सकता है, बल्कि धैर्य्यके साथ सहन करनेसे ही उसका तीखापन कम होता है।

विषयको उत्तम बनानेमें प्रशंसा है, न कि बिगाडने में। हमारे समय नहीं, तो बहुतेरे दुःख हमारे ही कियेके फल हैं।

देखो, स्वतन्त्रताका नाश निस्सन्देह एक भारी दुःख है, परन्तु इसका भी सदुपयोग हो सकता है। अँगरेज़ी भाषाका अत्युत्तम ग्रन्थ "Pilgrims Progress" बन्दीगृहमें ही लिखा गया था।

हम लोग अनेक ऐसे दुःखोंके डरसे भयाकुल रहते हैं, जो कभी वास्तवमें होते भी नहीं। एक वृद्ध विद्वानने कहा था, कि मेरी इतनी उम्र बीत गई और मैंने अनेक दुःख सहे; परन्तु हमारे आधे दुःख केवल भावनाके ही दुःख थे।

मनुष्योंके बड़े दुःखोंमें एक मृत्यु भी है, परन्तु यदि जीवन दुःखमय है तब तो मृत्यु अवश्य सुखमयी होनी चाहिये थी। इसी प्रकार यदि कहे, कि नहीं, मृत्यु ही दुःख है, तो जीवन अवश्य सुख होगा, अर्थात् दोनोंमें से एक तो सुख अवश्य है। मै कहता हूँ, कि मृत्यु दुःख नहीं है; क्योंकि हमने मरते हुए अनेक मनुष्योंको यह कहते हुए सुना है, कि मेरा सच्चा सुख-दिन आज ही है। हम लोग अनेक अच्छी चीजोंको भी

नीच दृष्टिसे तब तक देखते रहते हैं, जब तक हमलोग उन्हें एकदम खो नहीं बैठते।

प्रकृति अत्यन्त उदार है, यदि तुमने अपना कार्य्य अपनी सामर्थ्य तक समाप्त कर दिया है, तब आशा लगाये हुए उसके फलके लिये धैर्य्य रखो, उद्विग्न होने से कुछ नहीं होता, "समय पाय तरुवर फले।"

सन्तोष मनुष्योंको राजराजेश्वरोंसे भी ऊपर कर देता है। एक बार महात्मा सिकन्दर एक दीन मनुष्य के निकट गया, जो एक पीपेमें पड़ा हुआ, सदा सन्तुष्ट रहता था। सिकन्दरने अपनी जीवनी में लिखा है, कि यही एक मनुष्य संसारमें है, जिसे मैं न कुछ दे सका और न जिससे कुछ लेसका।

मनुष्यको अपने भोग्य पदार्थों के लिये बहुत दुःख उठाना पड़ता है, परन्तु बहुत लोग अपने सुख-सामानों के लिये दुःख उठाते हैं। घोड़े, महल, मकानात, जेवर इत्यादि के लिये दुःख उठाना निरी मूर्खता है। सञ्चय बहुत उत्तम है। वृद्धावस्थाके लिये सञ्चय करना ही चाहिये, परन्तु शान्ति और सुखका सञ्चय इससे कहीं बढ़कर है। क्योंकि हर्ष और शान्ति सदा साथ रहते हैं।

अत, मित्रो! असन्तोषसे पीछा छुड़ाओ, इसको मार भगाओ। दुःखोंसे भागनेका उद्योग निष्फल है; क्योंकि वे अवश्यम्भावी हैं। इसलिये उनका सामना, सन्तोष और शान्ति के साथ करो, वे आपसे आप भाग जायँगी।

विपत्ति।

जीवन ऐसा विषय है और यह इतने परिवर्त्तनों से पूर्ण है, कि विपत्ति और अभाग्यका रोकना असम्भव है। वे स्वभावतः आ ही जाया करते हैं। ऐसा कोई झुण्ड नहीं, जिसमें दो एक पशु मरे न हों, वा ऐसा वंश शायद ही कोई होगा, जिसके दो एक व्यक्ति कालके कौर न हुए हों? क्या मनुष्य उपाय नहीं करता?

यह बात नहीं, यह स्वाभाविक है। उद्योगसे प्रकृति मार्ग-भ्रष्टा नहीं होती।

जीवनकी विपत्तियोंको दो भागोंमें बाँट दो। एकतो वास्तविक विपत्ति है। दूसरी जो केवल आकारिक है। अब इस दूसरे भागको छः भागों में विभक्त कर दो। (१) कल्पित (२) तुच्छ (३) स्वयं उत्पादित (४) कर्म्म-दण्ड (५) चेतावनी (६) परीक्षा।

अब मैं बतलाता हूँ, कि कौनसी विपत्तियाँ किन किन शीर्षकों में आती हैं :—

पीडा प्रायः कर्म्मदण्ड वा चितौनी है। यदि मनुष्यको पीडा नहीं होती, तो शायद हम लोगोंको बालकपनमें ही इतिश्री हो

जाती। पीड़ा, अनन्त रूप से, हमें भविष्य विपत्तियोंसे चिता देती है। अन्य दुःख केवल परीक्षा वा अवकाश मात्र है।

परमेश्वर विपत्तिका व्यवहार हमारे भलेके लिये ही करता है। विपत्ति यद्यपि दुर्दान्त सर्पकी नांई है, परन्तु इसके गुण सर्पकी मणिसे कम मूल्यवान नहीं हैं। धन और प्रभुता भारी लिप्सा है। संसारके अनेक नृपतिगण बड़े अच्छे नागरिक होते, यदि कुटिल धनके पाले पड़ नष्ट न हो जाते।

विपत्ति मित्रों की कसौटी है, "सेवक, सचिव, मित्र, अरु-नारी, आपद-काल परखिये चारी," यह वाक्य अत्यन्त ही उत्तम और सत्य है। विपत्ति गुणवानों के गुणोंको प्रकट कर देती है। राष्ट्रकी विपत्ति भी उपयोगी ही है, क्योंकि इसके द्वारा मनुष्यो में एकता का सञ्चार हो जाता है। रात जितनी अँधियारी होगी नक्षत्र उतने ही देदीप्यमान होंगे। घन में ही विद्युत का प्रकाश होता है। बस, यही बात विपत्ति के विषयमें भी समझ लेनी चाहिये।

हम लोगोंका संसार ऐसा है, जिसमें हताश होना कदापि उचित नहीं। अनेक वाचस्पतियोंकी जीवनियाँ हमने पढ़ी हैं, और सबोंमें यही देखा है, कि अमुक तीन बार बोलने को उठे और मूर्ख बनकर बैठ रहे, परन्तु वे हताश नहीं हुए, इसीलिये संसार में उनका नाम अमर हो गया।

कुछ ऐसे कष्ट है, जो केवल कल्पित वा तुच्छ है। सब विपत्तियों में वही अत्यन्त दुःखकर है, जो कभी होती नहीं।

हमलोग तुच्छ कष्टोंके लिये भी भारी मानसिक क्लेश उठाते हैं।

अनेक क्लेशो के तो हम स्वयं ही विधाता है। पाठक यदि कहें, कि लेखक तो केवल आकारिक विपत्तियोंको ही जोड़ता जा रहा है, वास्तविकका नाम भी नहीं लेता। परन्तु महाशय! लेखक बतलावे क्या, विपत्ति वास्तविक है कहाँ?

वास्तविक श्रेणी मे प्रेयस सम्बन्धियोंकी मृत्यु वा निरपराध होते भी अस्वस्थ हो जाना इत्यादि ही आ सकते हैं। हम लोग तो वृथा के टण्टे में फँस कर दुःख बुलाते है। दूसरे प्रकार के दुःख हम लोग, दूसरोंके कार्य्य में बिना लाभके हाथ डाल-कर, मोल लेते हैं।

एक विद्वानने कहा है, कि संसारके सब दिवालियोंका हिसाब लेकर देखें, तो ज्ञात होगा कि उनके सफल मनोरथ न होनेका कारण यह है, कि वे ऐसे कामोंमें हाथ लगा देते हैं जिनका ज्ञान उन्हे कुछ भी नहीं रहता।

बुद्धिमान मनुष्यों के लिये झगड़ोंसे निबटारा पाना, भाग्यकी बात है; परन्तु मूर्खोंको तो बिना झगड़ेके अन्नका पचाना कठिन है। तुम्हे चाहिये, कि संसारको अपने मार्गसे जाने दो; तो वे भी तुम्हारे मार्गों में अड़चन नहीं डालेंगे।

भूल वा अपराध के फलरूप जो दुःख होते है, उनको अपने कर्म्म-दण्डकी कोटिमें रखना ही उचित है और उनके लिये दुःखी होनेका कोई अधिकार भी हमें नहीं।

निर्धनता, अस्वास्थ्य, वा क्लेशोंसे मनुष्य दुःखी नहीं होता ; बल्कि अपना गर्व, बृहत आकाङ्क्षा, पाप और स्वार्थपरता ही दुःखके कारण हैं।

अन्तमें, मैं यह बतलाता हूँ,कि विपत्ति वास्तवमें आशीर्वाद किस तरह है।

कोई मनुष्य विपत्तिसे नाश नहीं होता, जो पहले सम्पत्ति से नष्ट न हुआ हो। दुर्भाग्य का हिम, जीवनके जलको भले ही जमा दे, परन्तु अन्तःधारको मधुर गति इसके रोके थोड़े ही रुक सकती है।

दुःख चिरस्थायी होते नहीं देखा गया है। भयानक तुफान वा वर्षा क्या दिन-रात ठहर सकती है ? जब कि स्वर्गीय आपदाओंको यह बात है , तो फिर मानुषिक दुःखोंका क्या कहना ? वे तो और भी अचिरस्थायी होते हैं।

हमें किसी बातमें हताश होना नहीं चाहिये। दुःख-सुख दिन-रातको नाईं कट ही जाते हैं। मनुष्य जो यह बात ध्यानमें रखे, कि मैं अब भाग्यके चङ्गुलमें नहीं हूँ , क्योंकि जो एक बार नीचे गिर गया है, वह फिर क्या गिरेगा , तो उसको विपत्ति कुछ ऐसी कड़वी बोध नहीं होगी।

धनी होनेसे दीन और आशा-युक्त होना कहीं अच्छा है , क्योंकि धनियोंको तो दीन होनेका भय है , परन्तु दीनोंको क्या भय ? वे निष्कण्टक है। जीवनमें, कभी तो मनुष्योंको वीर और कभी सावधान होना पड़ता है , परन्तु कठिनाई यह

विचारनेमें होती है, कि समय किस पक्ष के अवलम्बन कर-
ने का है।

जहां संशय हो, वहां कुछ नहीं करना उचित है। कार्य्य
न करना सहज है, पर करके सुधारना असम्भव है।

चित्रकारोंने भाग्यको अन्धा चित्रित किया है; परन्तु यदि
सच पूछो तो हम लोग ही अन्धे हैं, क्योंकि प्रकृतिके रहस्यको
जानना असम्भव है। सौभाग्य का सहन करना, दुर्भाग्यको
सहन करनेसे, अधिक कठिन है।

दुर्भाग्यके लिये, केवल एक गुण धैर्य्य ही चाहिये, परन्तु
"सौभाग्य" बिना बुद्धिमानी, सावधानता, समय तथा निःस्वार्थता
के मनुष्योंको नाश कर देता है।

विपत्तिका सामना करनेके लिये, मनुष्योंको महात्मा मिल्टन
की बात स्मरण रखनी चाहिये :—

"मैं परमेश्वरकी इच्छाके प्रतिकूल आपत्ति नहीं करता।
हे ईश्वर! राज़ी हूँ उसीमें, है रज़ा जिसमें तेरी"—मैं
अपना कार्य्य करता हूँ, तू अपना कार्य्य कर।

हमें जानना चाहिये, कि सहनशील तथा सहनवीर होना कैसा
उत्तम है। इस प्रकार विपत्तिका सामना करना सबसे ठीक है।

संसारकी अनेक विपत्तियां, कुछ न कुछ, उत्तम फलको
देनेवाली ही होती है, जैसे नदीकी बाढ़ जब घट जाती है, तो
किनारे के खेतोंको उपजाऊ करके छोड़ जाती है, ज्वालामुखी
पर्वतोंने देशके देशको धन सम्पन्न कर दिया है।

इसमें संशय नहीं, कि मनुष्य कभी कभी क्लेशके निष्ठुर भावसे पानी पानी हो गये हैं, परन्तु मेरे जानते क्लेशसे केवल कुवस्तुओंका ही नाश होता है। जैसे, यदि धानके डण्ठलोंको पीटो तो केवल नीरस पुआल ही टूटेगा, धानकी एक फली भी नष्ट न होगी। बस यही उदाहरण ठीक समझो .—

"विपति बरोबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय।
इष्ट मित्र अरु बन्धु सब, जानि पड़े सब कोय॥"
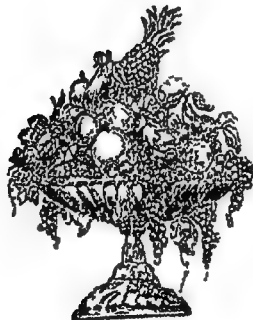
दयालुता।

नुष्योंको क्षुद्रचेता होना उचित नहीं ; उदार मनुष्य ही नरश्रेष्ठ कहे जानेके योग्य हैं। प्रायः बालकोंसे वा अस्वस्थोंसे क्रोधित होना, मनुष्य उचित नहीं समझते।

मृतकोंके विषयमें कटुक्ति भी प्रायः निवार्य्य ही है ; फिर मैं पूछता हूँ, कि इतनी दयालुता जब पूर्वोक्तों पर की हो जाती है, तो फिर अन्य जन क्यों इससे वञ्चित रहें ?

यदि प्रत्येक मनुष्य एक दूसरेका सम्पूर्ण वृत्तान्त जानता होता, कि अमुकने कितनी लिप्साओंको रोका है, अमुकने कितनी कठिनाइयोंसे अमुक कार्य्यको किया है, तो संसार एक बार ही दयावारिसे प्लावित और परिपूर्ण हो जाता।

हम लोगोंको बालकोंपर दया करनी चाहिये, क्योंकि वे बच्चे हैं। स्त्रियोंको क्षमा करना चाहिये; क्योंकि वे निर्बल हैं। शासकोंपर दया चाहिये ; क्योंकि उन्हें बहुत कुछ निर्णय करना होता है और वे भूल कर सकते हैं। सज्जनोंको क्षमा करना चाहिये ; क्योंकि उनका अभिप्राय प्रत्येक कार्य्यमें अच्छा ही रहता है। दुर्जन दया के पात्र हैं, क्योंकि उनका भविष्य अन्धकारमय है।

किसीने सच ही कहा है,-कि पर-दूषणके परखनेसे कोई सहज कार्य्य संसारमें नहीं, और आत्म-अध्ययनसे बढ़कर कठिन कार्य्य भी नहीं।

प्रत्येक मनुष्यको अपने कर्त्तव्य पर ही अधिक ध्यान देना चाहिये। यह देखना, कि दूसरेको क्या करना चाहिये, निष्फल है। दूसरोंके दोषों पर अनुग्रह-शील और सदय होना चाहिये, परन्तु अपने दोषोंके बीजोंको ही नष्ट कर देना उचित है, इन पर दयालु होना, अपने हाथ पैरोंमें कुल्हाड़ी मारना है। अपने शत्रुओंके गुणोंकी ओर ही देखो। हम लोग दूसरोंके अपराधों पर असन्तोष प्रकट करते हैं, परन्तु अपने ही अपराधसे हम लोग अधिक दुःख उठाते हैं। हमें चाहिये, कि अपने आपको सुधारें।

पाठको! सब कुछ जाने दो, मैं कहता हूँ कि मनुष्यों को, अन्य कारणोंसे नहीं तो, कमसे काम अपनी शान्तिके लिये तो, दूसरों पर दयालु होना उचित है। उनके प्रमादोंका अनुकूल अर्थ लगाना, उनके अपराधोंको क्षमा करना, उनके गुणोंकी सराहना करना, मानों उनको मैत्रीका बयाना देना है। ये गुण मनुष्यको, एक न एक दिन, विश्वामित्र कहे जानेके योग्य बना देंगे।

हम लोग जब स्वयं ही निर्दोष नहीं हैं, तब अन्यका दोष ढूँढना कैसा? दूसरोंके व्यभिचारों या अपराधों पर क्रुद्ध होना, मुझे ठीक उसी प्रकार मालूम होता है, जैसे आँधी

तूफान पर रुष्ट होकर गालियाँ देना। भला क्रुद्ध होनेसे तुम्हें क्या लाभ है? इससे उसका तो सुधार हुआ नहीं, उल्टी तुम्हारी ही हानि हुई। दूसरेको क्षति पहुँचाने में, तुम्हें अपनी ही क्षतिकी अधिक सम्भावना है। पुराने अपमान तथा क्षतिका बदला लेनेके उद्योगमें, मनुष्य परस्पर झगड़ा खड़ा कर लेता है; जिससे लाभ तो कुछ नहीं होता, बल्कि हानि अवश्य होती है।

वह मनुष्य, जिसमें अनुकम्पा नहीं है, दूसरोंकी दयाके योग्य भी नहीं है। यदि तुम दूसरोंसे उदासीन हो, तो दूसरे तुमसे कब मित्रता कर सकते हैं? उल्टे, वे तुम्हारे ऊपर जलते हुए अङ्गारोंकी वर्षा करनेमें भी कभी नहीं चूकेंगे। मनुष्य जो अपनेको दूसरोंसे अलग रखनेका उद्योग करता है, वह स्वयं ही समाजसे अलग कर दिया जाता है। यदि हम लोग प्रेम करना नहीं सीखे, तो प्रेमके गुणोंको भी हम लोग नहीं पहिचान सकते। हम लोग यदि दूसरेके प्रेमके योग्य न हों; तो हमारा भी हृदय ठीक जमी बरफकी नाईं हो जायगा, जो पिघल तो सकती है; परन्तु गर्म नहीं हो सकती।

पाठक! यदि मनुष्य, संसारको हमलोगोंकी दृष्टिसे देखे तो मनुष्य-जीवन उज्वल और अनुरागमय हो जा सकता है, परन्तु "मैं" को कर्त्ता बनाना, स्वार्थपूर्ण और दीन जीवन है।

हमारा धर्म इतना ही नहीं है, बल्कि जीवनके सच्चे सुखोंमें परोपकारसे बढ़कर और कोई सुख नहीं, तथापि परो-

पकार करनेके पहले, हमें दूसरों से प्रेम करना होगा, उन्हें पहिचानना होगा। दूसरोंकी भलाई, केवल भलाई करनेकी इच्छामात्रसे, नहीं हो सकती, इसके लिये हममें यथायोग्य का विचार और पूर्ण विवेक होना चाहिये।

दीनोंको दान देनेमें, हमारा उद्देश्य यह होना चाहिये कि वे स्वतंत्र होवें, न कि वे भिचान्न लेते लेते, परतन्त्रताकी बेड़ीमें और भी अधिक जकड़ जावें। दूसरोंको सुखी करना निःसंशय पुण्यकार्य है, परन्तु मनुष्य सुखी तब तक नहीं हो सकता, जब तक उसके चरित्र-गठनका उद्योग नहीं किया जाय। दान यदि मूर्खतासे किया जाय, तो उसका फल उल्टाही होगा। दानशील बहुधा बहरे नहीं होते, बल्कि अन्धे होते हैं। एक दीन को यदि तुम कुछ रुपये देदो, तो वह पुनः माँगता ही रहेगा, परन्तु यदि तुम उसके बुद्धि-अन्धकारको दूर कर दो, तो वह लेनेके बदले देने लगेगा।

दान करना किसे और कैसे, यह एक कठिन समस्या है। देना तो अवश्य ही सहज है, परन्तु दान देकर उसके आत्म भिमान और आत्मविश्वासकी रचा करना कठिन है।

हम लोगोंका उद्देश्य केवल दान देना ही नहीं होना चाहिये, बल्कि उसकी स्वतन्त्रताकी रचा करना भी।

यदि हम लोगोंने अपने निर्भरोंको निस्सहाय बना दिया, तब तो उनको लाभ पहुँचानेके बदले हानि कर बैठे, उन्हें ऊँचा उठानेके बदले नीचे ढकेल दिया।

प्रेम-दान करनेमें, अवश्य ही हमें संकोच नहीं करना चाहिये। प्रेमका भण्डार अनन्त है, जितना अधिक व्यय करोगे, उतना ही बढ़ेगा।

मनुष्य गिने हुए धनका व्यय कर सकता है। जितना हम कुपात्रोंको देते हैं, उसका एक अंश भी सुपात्रोंको नहीं देते। यदि दयाके कारण, हम लोग एक दुष्टको स्थान देवें, तो कोई सज्जन, स्थान बिना, अवश्य भटक जायगा। यदि तुम एक असंयमी को धन देते हो, तो तुम सरकारके आबकारी विभागकी उन्नति करते हो।

परिमित व्ययी लोगोंको, अपरिमित व्ययियोंके लिये दुःख देना उचित नहीं। यदि हम लोग भविष्यकी प्रवृद्धि चाहते है, तो ईश्वरीय कर्म्म और उसके फलका न्याय संसारमें जारी रखना चाहिये, अर्थात् जो बुरा है वह दुःखी हो, जो अच्छा है वह सुखी हो।

धन देना प्रायः मूर्खता है, परन्तु योग्य सहायता, समय और दयाका दान, कभी कुमार्गमें नहीं जा सकता। दान देना भले ही कभी असंगत हो; परन्तु क्षमा करना सदा ही न्याय-संगत है और अपराध का भूल जाना तो सर्वोत्कृष्ट ही है।

एक राजाने मृत्यु-शय्यापर अपने पुत्रको उपदेश दिया—कि दीनोंको सुखी करना; शक्तिहीनोंको शक्तिशालियों से रक्षा करना, और अपनी प्रभुता पर भटके हुएको रास्तेपर लाना।

बैठा। यदि तुम इतना करोगे, तो परमेश्वर तुमसे सन्तुष्ट होगा और वह स्वय ही तुम्हारा पारितोषिक होगा।

स्वार्थपरता सबसे बड़ा दुःख है। परन्तु स्वार्थका त्याग सहज है। तुम प्रतिदिन दूसरोंके कष्टोंका विचार करो, फिर तुम देखोगे कि तुम अपने आपका कष्ट भूल से गये हो।

कहावत है, कि प्रेमका प्रकट करना भी मनुष्योंको अनेक शोकों और कठिनाइयों से बचाता है और साथ ही निज कर्माभिमुख प्रेरित करता है।

एक चित्रकारसे पूछा गया, कि भाई! तुम कैसे इतने नामी चित्रकार हुए,. उसने उत्तर दिया, कि बालकपनमें मैंने एक तस्वीर बनाकर अपनी माताको दिखाई। माने प्रसन्न होकर मुझे चूम लिया। बस, वही चुम्बन, वही प्रेमका प्रगटी-करण, मेरे इस पदपर पहुँचानेका कारण हुआ।

किसी चित्रकारकी बड़ी बड़ाई होती थी, कि वह तनिकसे हेर फेरसे,हँसते हुए चित्रको रोता हुआ,बना देता था। किसी महात्माने कहा, कि अजी! इसमें क्या खूबी है? शब्दोंमें तो इससे भी बढ़कर गुण है। एक कड़वी बात किसी प्रसन्न मनुष्यको कह दो, वह तत्काल उदास हो जायगा और किसी खिन्न मनुष्यको एक चुलबुलाती बात कह दो,वह प्रसन्न-मुख हो जायगा।

वाक्य-बाण बड़े तीखे होते है। प्यार करना, किये जानेसे उत्तम है। कठोरताकी अपेक्षा, दयाके द्वारा बालकोंपर अधिक प्रभाव डाला जा सकता है।

ईश्वरका सबसे बड़ा गुण जानते हैं पाठक? यह गुण उसकी "क्षमा" है। हम लोग सब कोई क्षमाशील हो सकते हैं, इसके लिये शक्तिकी नहीं, बल्कि इच्छाकी आवश्यकता है। यदि तुम पर कोई कड़ाई करता है तो इसमें सन्देह नहीं, कि वह तुम्हें दुःख देता है, परन्तु साथ ही साथ तुम्हें स्वर्गीय गुण क्षमा सिखलाता भी है। बदला लेना तो मानविक है, परन्तु क्षमा करना दैविक गुण है। यदि हम दूसरेको क्षमा नहीं करते, तो भला ईश्वर कब हमें क्षमा कर सकता है? मधुर उत्तरसे क्रोध दूर हो जाता है। यदि तुम अपने शत्रुसे लड़ते हो, तो तुम उसके बराबर हो, परन्तु यदि तुमने उसे क्षमा कर दिया, तब तो तुम उससे करोड़ों गुणा ऊपरको उठ गये। बदला लेनेके विचारमें, हम लोग अपने भूत अपमानों और दुःखोंका स्मरण करते हैं, इसका फल यह होता है, कि पुरानी चोट नई और ताजी हो जाती है और मानसिक शान्ति उथल-पुथल हो जाती है। दूसरेको दुःख देनेमें तुम चूक जा सकते हो, परन्तु इससे तुम अपने ऊपर अवश्य निष्प्रयोजन भारी दुःख चढ़ा लेते हो।

प्रत्येक मनुष्यमें कुछ न कुछ गुण हैं, उसीको तुम ढूंढ़ो, उसीसे तुम सुखी होगे।

लोग कहते हैं, कि संसारमें कोई भी दूसरोंकी सहायता करनेके योग्य नहीं, परन्तु यह उनकी भूल है। मनुष्य जितनी ही सहायता करता है, उतनी ही उसकी क्षमता बढ़ती जाती है।

भला या बुरा जो कुछ हमारा ज्ञात है, नष्ट नहीं होता। रुपये पैसों से जीवनकी आवश्यकतायें पूरी हो सकती हैं, परन्तु इन सबों से मधुर वचन सुननेका सुख कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार कटु वचनसे बढ़कर, मनुष्यको दीनता, विष वा चोट भी अधिक दुःखदायी नहीं होती। दयालु होना सहज नहीं है।

जो वचन मधुर वा कटु मुखसे निकल गया, वह छूटे हुए तीरकी नाईं फिर वापस नहीं लौटता, इसलिये मनुष्यको मधुर वचन ही बोलना चाहिये। कटु वचनके बाद, क्षमा करना फिजूल है।

किसी विद्वानने स्वर्ग और नर्कका अच्छा वर्णन किया है। वह कहता है, कि स्वर्गमें प्रत्येक मनुष्य अपने पासकी कुल वस्तुओंको दूसरे को देनेके लिये तत्पर रहता है, परन्तु नर्कमें दूसरोंकी वस्तुओंको ले लेने का ही निरन्तर उद्योग होता रहता है।

प्रेम, दया और चित्तकी शान्तिके बिना भी मनुष्य धनवान और बलवान हो सकता है, परन्तु इनके बिना मनुष्य सुखी कदापि नहीं रह सकता। पूर्वोक्तोंके बिना स्वर्ग भी नर्क है। इसके प्रतिकूल यदि हममें प्रेम, दया और शान्ति हो, तो हम लोग सुखी और मनुष्य-तनमें देव होनेके योग्य हो सकते हैं और हमारे पार्थिव गृह आदि कहीं स्वर्गीय-कानन हो जा सकते हैं।

बहुतेरे लोग दु खकी गठरीका ढोना ही उत्तम समझते हैं ; परन्तु यह मूर्खता है।

पाठक ! आप बतलावें कि "गृह" क्योंकर बनता है ? आप कहेंगे, कि मूर्ख ! "गृह"—लकड़ी, ईंट और चूनेसे बनता है। नहीं, पाठक नहीं, आप रुष्ट न हों, धनके द्वारा प्रासाद, घटा, अटारी बन सकते हैं, परन्तु प्रेमके द्वारा गृह बनता है। गृह ही नहीं बनता, बल्कि स्वर्ग तक बन जाता है।

लोग कहते हैं, कि मित्रोंको प्यार करो और शत्रुओंसे घृणा करो ; परन्तु मैं कहता हूँ, कि शत्रुपर भी दया करो। जो तुम्हें गाली दे, उसे भी तुम आशीर्वाद दो। जो तुमसे घृणा करे, उसका उपकार करो। जो तुम्हें दुःख दे, उसके लिये ईश्वरसे क्षमा माँगो ; फिर देखो कैसे—

"तुम्हें फुलका फूल है, उनको है तिरशूल।"

मित्र और शत्रु।

संसार भी कैसा विचित्र है। इसके अधिवासी कैसे अद्भुत हैं!! जगत्में कुछ ऐसे मनुष्य हैं, जो मित्र बनाने के लिये तो उद्योग नहीं करते, उलटे शत्रु बना लेना ही अपने जीवनका एक मात्र उद्देश्य समझते हैं। शत्रु जगत्में बहुत शीघ्र हो जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि, बुद्धिमान शत्रु मूर्ख मित्रसे उत्तम है, परन्तु इससे क्या मैं यह कह सकता हूँ, कि शत्रुसे कुछ अपनी कार्य्य सिद्ध हो सकती है?

शत्रु भी उपयोगी होते है। शत्रु हमें हमारे दोषोंकी ओरसे सावधान कर देते है। यह काम एक साधारण मित्रके लिये कदापि नहीं हो सकता। मित्र सदा निष्कपट नहीं होते, परन्तु शत्रु होते है। छद्मवेशी मित्रोंसे हमें सावधान रहना चाहिये—वे हमारे गुप्त शत्रु है।

एक सेनानायक जब युद्ध-क्षेत्रमें जाने लगा, तो अपने राजासे कहने लगा—"महाराज! मैं तो शत्रुका सामना करने चला। मैं उससे अपनी रक्षा कर लूँगा, परन्तु आप मेरी रक्षा मेरे मित्रोंसे कीजियेगा।"

सनातन मित्र पुरानी मदिराकी नाईं है, जिसका पीने-वाला पुनः नये की चाह नहीं करता, परन्तु पुराने मित्र भी एक न एक दिन नये अवश्य होंगे, इसलिये नई मित्रता करो और उन्हें योग्य पाकर सञ्चय करो, जिसमें वे पुराने और मधुर हो जावें।

संसारके सर्वोत्तम सुखोंमें मित्र-सम्मिलन भी एक सुख है और दुःखों में मित्र-विछोह एक भारी दुःख है।

मित्रोंसे बिछुड़ने पर ही मालुम होता है, कि उनके रह-नेसे कैसा सुख था। सत्य मित्रका मिलना कठिन है। इस-लिये जब ये मिल जायँ, तो फिर इस धन-कोषकी पूरी रक्षा करनी चाहिये। इन्हें हृदय-मन्दिरमें संरक्षित रखना चाहिये। मित्रता दुःख को सह्य और सुखको और भी मधुरतम बना देती है।

सत्य मित्रोंकी रक्षा करो। उनकी सहायता करो। उनके लिये खड़े हो। उनके सुखमें सुखी और दुःखमें सहानुभूतिमय होकर उन्हें सन्तुष्ट करो। संक्षेपतः, यदि काम आ पड़े तो उनके लिये प्राण तक दे देनेमें भी कुछ भय न करो।

अरबोंमें एक प्राचीन विश्वास है, कि उस मनुष्य को कदापि दुःख न देना चाहिये, जो उनका नमक खा चुका है। परन्तु मैं कहता हूँ, कि मित्रता करनेके पहले, सेरों नमक एक साथ खा लेना चाहिये अर्थात बिना सुपरिचित हुए मित्रता करना उचित नहीं। मित्रोंके गुणों पर चादर नहीं डालनी

चाहिये, बल्कि उनको अनेक कल्पित गुणोंसे भी आभूषित समझना ही ठीक है। अर्थात् वही उद्योग करना चाहिये, कि मित्रोंका मान हमारी दृष्टिमे प्रतिदिन अधिकाधिक बढता ही जाय। मित्रोंको सुकार्य्यमें सहायता देनी तो अवश्य चाहिये, परन्तु नीच काम करनेके लिये मित्रोंको कहना, अपने सम्मानको घटाना है।

शोक है, कि उचित-वक्ता मित्रका नाम, हमारे कानोंमें न जाने क्यों खटकता है। मित्र, तो वही है, जो हमारे अवगुणोंको हमें बतला दे और उनसे सावधान कर दे, परन्तु यह ज़रा कठिन है, क्योंकि मनुष्य अपने शत्रुका सामना कर सकता है, परन्तु मित्रका सामना करना और उस के अवगुणो पर उसकी दृष्टि आकर्षित कर देना असम्भव है।

मित्रता धर्म्माग्निको भले ही ठण्डी कर दे, परन्तु इसका प्रधान उद्देश्य और गुण, अधर्म्म पर मिट्टी डालना ही होना चाहिये।

मित्रोंके हृदयका इतना निकटतम सम्बन्ध होना चाहिये, कि मित्रोंमें मौखिक आलाप के स्थानपर मानसिक आलाप ही हुआ करे।

किसी विषयपर मतभेद होना, मित्रोंके लिये ठीक नहीं। इससे एक दूसरेकी ओरसे एक प्रकार की शिथिलता सी बढने लगती है।

ससारमें, मित्रोंका पचास फी सदी झगडा वैमनस्य से ही

उत्पन्न होता है। किसी बातका मनगढ़न्त अर्थ लगालेनेसे ही आपस में यह मन-मुटाव हो जाता है।

समाजको अनुरागमय बनानेके लिये बुद्धिमानोंकी आवश्यकता है। मनुष्य संसर्ग-प्रिय जीव है। उसे मित्रोंका सम्मिलन सबसे अधिक आनन्द देनेवाला बोध होता है। मनुष्य अकेला रहना नहीं चाहता।

पुस्तकोंका अवलोकन बड़ा ही आनन्ददायक है; परन्तु मित्रोंसे सम्भाषण, इससे कहीं बढ़कर सुख देनेवाला है। यह सुख भी उन्हींके सङ्ग प्राप्य है, जो एक प्राण दो देह है। परन्तु देखा गया है, कि वर्षों एक साथ रहनेवालों में भी हार्दिक परिचय प्रायः नहीं होता। बहुधा एक मित्र दूसरे के चरित्रसे पूरी तरह परिचित नहीं होते, जिसका फल यह होता है, कि परस्पर सहानुभूतिकी मात्रा बढ़नेके बदले घटने लगती है।

हृदयके दुःखका हृदयको ही पूरी तरहसे ज्ञान हो सकता है। "का कोई जाने पीर पराई।" मित्रोंके हृदयमें, महान् सादृश्य बल्कि एक भाव होना चाहिये; जिसमें एक को कष्ट होते ही, विद्युत्-तारके संयोगकी नाईं, दूसरेके हृदय पर भी तत्काल धक्का पहुँच जाय। यदि यहाँ आह निकले, तो वहाँ आँसुओं की झड़ी लगजानी चाहिये। मित्रोंका हृदय सुर मिली तंत्रीकी नाईं होना चाहिये, कि जहाँ एक तार पर, मिजराबकी उँगली पड़ी, त्योंही समूचा तार-समूह झंकार

कर उठा। परन्तु शोक है, कि हृदयका यथार्थ परिचय पाना ज़रा कठिन है। प्रायः, मैं उन मित्रोंके हृदयके विषयमें, जिनके पूर्ण ज्ञानका मैं गर्व करता था, पूरा धोखा उठा चुका हूँ। जिन्हें मैंने कुछ और समझा था, वे कुछ और ही निकले। एक साथ रहने, दुःख सुखमें हाथ बँटाने, वा दूरसे दूरकी यात्रा एक साथ करनेपर भी, मनुष्य एक दूसरेसे पूरे परिचित नहीं होते, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

संसारमें जीवन कष्टदायक बोध होने लगता है, यदि सच्चे मित्रोंके आनन्ददायक संसर्ग का अभाव हो जाता है। मनुष्य ज्योंही यह सोचने लगता है, कि इस संसार में हमारा कोई नहीं है; उसी समय जीवनसे घृणा और अपना अस्तित्व उसे बोझसा हो जाता है। इसलिये जीवनको अनुरागमय बनानेके लिये, हमें मित्रोंकी आवश्यकता है। चित्त की विजनता, प्रायः समस्त निर्जनताओंसे दुःखकर है। इस लिये यदि सच पूछो, तो मित्र-समागम ही जीवन है और इसका न होना मृत्यु है।

इसमें सन्देह नहीं, कि कभी कभी मनुष्य विजनता भी चाहता है। जिस समय हमारी मृत राजराजेश्वरी विक्टोरिया को सम्वाददाताओंने विलियमकी मृत्यु और उसके उत्तरा- धिकारी चुने जानेका समाचार दिया, उस समय उसकी सबसे पहली प्रार्थना उन लोगोंसे यह हुई, कि वह कम से कम दो घण्टे तक अपने कमरेमें, अकेली, छोड़ दी जावे।

पाठक! विजनतामें भी एक प्रकारका सुख है, परन्तु इसका उपयोग भी अपने आपके ऊपर निर्भर है। मनुष्य इस निर्जनताको चाहे तो पवित्र मन्दिर वा एक बार ही बन्दी-गृह भी बना सकता है। अँगरेजी कवि कौपरकी सम्मति का समर्थन सब कोई नहीं कर सकता। वह कहता है कि "—मैं तो चाहता हूँ, कि मैं किसी ऐसे निविड़ अन्धकार में कुटी बनाकर रहता, जहाँ मनुष्य-कलरवका शब्द कानों तक नहीं पहुँचता, या जहाँ से संसारके दुःख सुखका भाग लेनेसे वञ्चित रहता अथवा जहाँ राष्ट्रोंकी जय पराजयसे, मैं हर्षित वा द्रवीभूत नहीं होता।

यदि देखा जाय तो एक प्रकारसे, वे जो हमारे नेत्रोंसे दूर हैं, वास्तवमें उनसे जो सम्मुख विद्यमान हैं, निकटतम हैं। कैसे? मेरा अनुभव है, कि मैं प्रायः उन्हींको अधिक स्मरण करता हूँ, जो मुझसे अलग हैं, परन्तु उनका जो सदा ही रहते हैं, उतना ध्यान नहीं आता। एक जन-समूहसे घिरे रहने पर भी मनुष्य अपने चित्तको शान्त रख सकता है। पाठक! गोस्वामी तुलसीदासजीके इस भावपूर्ण वाक्य "तनते कर्म्म करौं विधि नाना, मन राखो जहँ कृपा निधाना।" का अर्थ भी यही है कि बाह्य संसर्गसे आन्तरिक शान्तिमें कुछ अधिक उथल-पुथल नहीं हो सकती। परन्तु हाँ, इसमें सन्देह नहीं, कि इसके लिये कुछ आत्म-शक्ति की आवश्यकता है। यदि सच पूछो तो, संसारमें वही सच्चा महात्मा

है, जो कर्ण-भेदी जनरवमें भी हृदयको शान्त रखनेमें समर्थ है।

अस्तु, अब पाठकोंको बतलाता हूँ, कि मित्रोंमें आलाप किस प्रकारका होना चाहिये,—आलाप स्वाभाविक, निष्कपट और सहज होना चाहिये। परन्तु यह हृदयङ्गम तब तक नहीं होसकता, जब तक इसको मनोहर बनाने का उद्योग न किया जाय। मनुष्यको चाहिये, कि अपनी योग्यता सोचनेके पहले अपनी अयोग्यताही सोच लेवे, कि मै किस विषय के सीखने योग्य हूँ। मुझे एक महान विज्ञानवेत्ता के परिचयका सौभाग्य प्राप्त है। आप जैसे विद्याधुरन्धर हैं, वैसे आलाप-पटु नहीं। बहुतरोंने तो उन्हें मूक ही समझ रखा है। मैं उन्हें उस समय सदा ही चुपचाप बैठे देखता हूँ, जब प्राकृतिक विज्ञानके भिन्न, अन्य विषयोंपर वार्त्तालाप होता है। परन्तु ज्योंही प्राकृतिक विज्ञानकी बात छिडती है तो फिर मत पूछिये, उन जैसा हृदयङ्गम करा देनेवाला मित्र आपको खोजे नहीं मिलेगा। कहनेका अर्थ यह है, कि वे जिस विषयको नहीं जानते, उसे दूसरे से सीखते है और वृथा उस विषयमें हस्तक्षेप करना मूर्खता समझते है। हमें इनके चरित्रसे उपदेश लेना चाहिये।

दो चार साथियोंके बीचमें, यदि सब कोई बोलना ही चाहें तो सुने कौन? इस लिये जहाँ मित्र-गोष्टी हो वा भिन्न भिन्न विषयोपर बातें होती हो वहाँ, जब तक अपनी

बारी नहीं आवे, बोलना नहीं चाहिये। सुनना भी बोलनेसे कम उपयोगी नहीं, इसकी भी शिक्षा आवश्यक है। धैर्यसे सुननेवाला, अधिक बकनेवाले मित्रसे, कहीं अच्छा है।

शब्दोंमें अद्भुत शक्ति है। साबरी मन्त्र भी शब्दोंका ही संयोग है; जिसका गुण अपरिमेय है। इन मन्त्रोंकी बात पाठक छोड़ भी देवें और प्रति दिनके जीवनका ही उदाहरण ले देखें, तोभी शब्दोंकी शक्तिका पूर्ण ज्ञान हो जायगा। जगत्में कौन ऐसा है, जिसे यह विदित नहीं, कि एक कटु वा क्रोध पूर्ण वचन हृदय को पारकर जाता है और आनन्द-मय समयमें भी उदासीकी घटा बहरादेता है, वा दुःखके समय, एक मधुर वचन मानसिक कष्टोंको दूरकर, आह्लाद-की छटा मुखपर छहरा देता है?

मित्रोंकी आपसमें कुछ गोपनीय बातें रहती हैं। अपने अपने अविदित विषयोंके लिये मनुष्योंको पूरा अधिकार है, वे कहें न कहें, परन्तु दूसरोंकी गुप्त बातें, दूसरोंसे विदित कर देनेका उन्हें अधिकार कदापि नहीं है।

मनुष्योंको सदा सहनशील और निष्कपट-चित्त होना उचित है, कुछ लोगोंको तुच्छ रहस्योंको गुप्त रखनेकी आदत रहती है; परन्तु यह एक प्रकारकी भूल है, परन्तु इसके साथ ही साथ दूसरोंपर हठात् विश्वास करना भी, इससे कम भूल नहीं है। बहुधा सज्जन और दयालु मनुष्योंको दूसरोंके रहस्योंको छिपा रखनेमें बड़ी कठिनाई मालुम होती है, और

बात भी यही है, अच्छाको छिपा रखनेसे अधिक कोई कठिन कार्य्य नहीं। जब मनुष्य अपने ही गुप्त विषयोंको छिपा नहीं सकता, तो भला दूसरे उसे क्योंकर रख सकते हैं ?

अब मैं पाठकोंको यह बतलाता हूँ, कि मित्रोंमें वैमनस्य क्योंकर उत्पन्न हो जाता है। देखा गया है, कि मन-मुटावका कारण प्रायः ऐसी बात होती है जिसका अर्थ और का और लगा लिया जाता है। कहनेवाले ने तो अच्छे मतलबसें कहा ; परन्तु सुननेवालेने उसका कुछ और ही मतलब लगा लिया; यदि कहनेवालेसे सुननेवालेका नया अर्थ सुनाया गया तो, वह उसे अवश्य इन्कार करेगा, परन्तु लोग उसका विश्वास नहीं करते है और कहते है, कि लो अब देखो, झूठ बोलकर यह अपना बचाव करने लगे। अच्छा, अब देखिये, कि बातोंके कैसे कैसे अर्थ लगते हैं। हमें बालकपनकी एक कथा स्मरण है, कि कोई दो मित्र एक दूसरेको बहुत चाहते और निष्कपट हो कर रहते थे। किसी शत्रुको उनका यह प्रेम अच्छा नहीं लगा। उसने इन दोनोंमें फूट पैदा करनेका विचार किया। एक दिन दोनों मित्र एक जगह बैठे थे, इतनेमें एक स्त्री आई और एक को बुलाकर कानमें कह दिया "कुछ नहीं"। वह विचारा लजा कर लौट आया और वह चली गई। पहले मित्रने पूछा, कि भाई उस स्त्रीने क्या कहा ? मित्रने जवाब दिया "कुछ नहीं"। चलो झगड़ा आरम्भ हो गया। मित्रने समझा, कि दूसरा मित्र हमसे झूठ बोल रहा है, बस मनमुटावका बीज बो गया।

इन सब कारणोंसे हमें चाहिये कि किसी मित्रकी बातोंका अविश्वास न करें। झगड़ा निरा बोदापन है। यदि हमारा मित्र सत्य कह रहा है, तब तो विश्वास करनेमें कोई हर्ज ही नहीं, यदि झूठ कह रहा हो या भूल गया हो, तोभी उसपर विश्वास करना दयालुतासे ख़ाली नहीं।

मित्रोंका स्मरण सब देशोंमें सब भेषोंमें रखना चाहिये। आनन्दमें, दुःखमें, तलपर, जलपर, पृथ्वी या पर्वत पर, जहाँ कहीं हम रहें, मित्रोंका स्मरण सुखकर ही बोध होता है।

संसारकी कोई वस्तु स्थिर नहीं, इसलिये हमें एक ऐसे मित्रकी खोज निकालना चाहिये, जिसे हम प्यार करें और वह हमें प्यार करे, क्योंकि जब प्रेमका जल सूख जाता है तब जीवनका सारा सौन्दर्य भी लोप हो हो जाता है।

यों तो मित्र लाखों हो सकते है, परन्तु सच्चे प्रेमी मित्रका मिलना कठिन है। प्रेमकी कैसी महिमा है, यह कैसा अपूर्व महान् और सार्वलौकिक है, कहा नहीं जाता। प्रेम के साम्राज्यमें संसारकी समग्र वस्तुएँ आ जाती हैं, चाहे वे दैविक या मानवीय हों। प्रेम जीवनके सद्गुणोंका दाता और कर्त्ता है। इसके प्रभावसे मृत्युके बाद भी आनन्द प्राप्त हो सकता है। बुद्धि परिमित भलेही हो, परन्तु प्रेम निःसंशय अपरिमित है, इसका ह्रास कदापि होनेका नहीं।

दूसरोंको देखकर जलना उचित नहीं, सभीसे प्रेम करो। उससे मित्रता करना उचित नहीं, जिसका हमें विश्वास नहीं,

परन्तु जब एक बार मित्रता कर चुके, तो अविश्वासको फट-कने देना कैसा ? पाठको ! हमारे इस प्रबन्धके पढनेसे आप जान गये होंगे, कि कट्टर शत्रु या सहृदय मित्रसे कितनी बुराइयाँ वा भलाइयाँ हो सकती है । पर मैं, अन्तमें, यह कह देना आवश्यक समझता हूँ, कि मनुष्यका अपने आपसे बढ़कर शत्रु वा मित्र कोई नहीं । मनुष्य अपने ही आप अपनी भलाई या बुराई करता है । शत्रु वा मित्र केवल कारण मात्र है ।

धन।

जी धनके सबसे सच्चे और बड़े सुख, आप जानते हैं कि क्या हैं, और क्योंकर मिलते हैं? संसारके सब सुखोंके मूल कारण कला, विज्ञान और संगीत है। आप कहेंगे, कि वाह वाह धनका नाम लेखकने लिया ही नहीं! अच्छा पाठक! लेखक अब आपको बतलाता है, कि धनसे सच्चा सुख कदापि नहीं मिलता।

मान लीजिये, कि अनेक सुन्दर मूर्त्तियों और चित्रोंका एक भण्डार किसी धनी मनुष्यके पास है। क्या आप कह सकते हैं, कि उन मूर्त्तियोंके शुभ दर्शन का सच्चा आनन्द, उस धनीको, एक निर्धन, परन्तु कला-निपुण मूर्तिकार वा चित्रकारसे, जो उनके गुण-दोषोंको समझता है—अधिक मिलता होगा? कदापि नहीं।

मूर्त्ति-स्वामीको क्या? वह अपने धनसे ख़रीदी हुई मूर्तियोंको उतनाही और उन्हीं दो नेत्रोंसे देख सकता है, जिनसे एक दरिद्र पथिक। फिर विभेद क्या रहा?

लक्षपतियोंको विज्ञानके झञ्झटोंमें पड़नेका समय ही

कब मिलता है ? वे तो केवल अपनी थैलियोंको गिनने ही में मग्न रहते हैं। सर्व सुखोंको मूल, विद्याकी प्राप्तिके लिये, समय की आवश्यकता है, धनकी कदापि नहीं। आज दिन उत्तमसे उत्तम पुस्तकें, आने रुपयों में, मोल ली जा सकती है। मनुष्यकी एक दिनकी कमाईसे महीनों तक पढने-योग्य पुस्तकें ख़रीदी जा सकती है।

एक बडा पुस्तकालय, निस्सन्देह, एक बडी सम्पत्ति है, परन्तु उस पुस्तकालयका सच्चा उपयोग, धनी महाशयसे, पुस्तकालयमें रहनेवाले दीन ग्रन्थाध्यक्ष ही करते है। पुस्तकोंकी बँधाई और अलमारियोंकी सफ़ाई ही, धनी स्वामीके मनोरञ्जनका कारण होती है। ग्रन्थशालाके स्वामी यदि कोई बड़े ओहदेदार हुए, तब तो कोई बात ही नहीं, उनको अपने काम से ही फ़ुरसत नहीं, कि किताबोंके विषयों पर ध्यान देवें।

समय ही सच्चा धन है, यह जगत्के विद्वानो द्वारा एकमत से निर्वाचित किया गया है।

अब इस समय रूप-धनके विषयमें भी मिला देखें, कि एक दरिद्र और लक्षपति धनीमें कितना अन्तर है। ईश्वरने धनी, निर्धन सबोंके लिये, दिनको केवल २४ घंटोंका ही बनाया है। धनकी अधिकतासे समय की मात्रा बढनेकी नहीं। मनुष्य आठ घण्टे सोते हैं, इस प्रकार धनी निर्धन दोनोंके जीवनका तृतीयांश एक प्रकार सुखसे कट जाता है, बल्कि यों कहिये, कि इस तृतीयांशमें भी निर्धन ही का समय सुखसे बीतता है,

क्योंकि वह विचारा तो दिनभर, अपने परिवार और अपनी रोटीके लिये, कठिन परिश्रम करता है, बस रात होते ही, जो बिछौनेपर पीठ दी, कि फिर भोर ही हो जाता है। यह सुख धनीको नसीब कहाँ? वहाँ तो दिन भर के हानि-लाभके शोच और वाणिज्यको तेज़ो मन्दीके डरसे मस्तिष्कमें चिन्ताग्नि धधकती रहती है। खाने पीनेके लिये, दोनोंको दो तीन घण्टोंसे काम समय नहीं लगता। यहाँ पर भी निर्धन ही को उत्कर्षता है, क्योंकि भूख कठिन परिश्रम करनेवालोंको ही खूब लगती है। जो कुछ रूखा सूखा सामने आया, सन्तुष्ट हो, भोजन कर लिया। पाठक! दिनके कमसे कम दस घण्टे तक, तो निर्धनको ही सुखी पाया न? अब, बाकी समयका भी हिसाब, मैं बताये देता हूँ।

दोनोंके लिये, कुछ समय, बाल बच्चोंके साथ बात-चीत और लाड प्यारके लिये भी आवश्यक है। इस 'समय' के उपयोग में भी, निर्धन धनीके बराबर है।

अब, चौबीस घण्टोंमेंसे, दस बारह घण्टे कामके लिये बच जाते हैं। पाठक! अब यहाँ देखना है, कि दोनोंमें से किसे अधिक सुख, इन घण्टोंमें, अनुभव होता है?

मस्तिष्क-परिचालन, अङ्ग संचालनसे कहीं अधिक ह्रासकारक है; परन्तु अब यहाँ प्रश्न उठता है, कि इन दोनोंमें कौन अधिक मनोरञ्जक है? यदि कोई राज-नियम वा अमेरिकन समाचार-पत्र पढ़े, तो उसे अमेरिकाके राजा वा

प्रेसिडेण्ट होनेसे, बढ़ही वा सङ्गतराशका काम करना कहीं उत्तम जचेगा।

किसी प्रकार जीवनका $\frac{3}{8}$ भाग, निर्धन और धनी दोनोंका एक प्रकार बीत जाता है। बाकीके लिये, मैं नहीं कह सकता कि कौन ऊँचा है। पाठक! यह दलील कर सकते हैं, कि दान देनेका आनन्द केवल धनीको ही प्राप्त हो सकता है, परन्तु नहीं पाठक! नहीं, तनिक विचार देखें, कि एक धनहीन भी दानी हो सकता है। दयार्द्र-हृदया, एक दीन हीन विधवाकी फटी थैलीका एक अधेला, धनीके उस सुवर्ण-मुद्रासे कहीं अच्छा है, जो किसी को घमण्डके साथ दिया जाता है। इस विषय में भी दोनोंमें बहुत कम अन्तर है।

मुझे एक विद्वानका कथन याद पड़ता है कि, संसारमें कितनी चीज़ें हैं, जिनकी मुझे कोई जरूरत नहीं। दया और सहानुभूति सब दान करने-योग्य धनोंसे श्रेष्ठ है और ये दोनो धनियोंकी अपेक्षा, निर्धनोंके द्वारा कहीं उत्तम प्रकारसे वितरण की जा सकती हैं।

रुपया पैसा धन नहीं। संसारमें बहुतोंको हम निर्धन कह-कर तिरस्कार करते हैं, परन्तु वे दरिद्र हों, यदि मानसिक शक्तियोंमें पवित्र तथा उत्तम संगति से युक्त हों तो, सच्चे धनी कहे जानेके योग्य हैं।

जीवनमें जो सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ है, वह रुपयोंसे कदापि नहीं खरीदा वा बेचा जा सकता। मनुष्यका सच्चा धन

संसारमें उसका अन्त सत्कर्म ही है। मरने पर सांसारिक मनुष्य भलेही उसके धनके विषयमें पूछे, परन्तु स्वर्गमें देवगण उसकी कीर्तिके ही जिज्ञासु होंगे। धन कभी कभी बहुत महँगा लेना पड़ता है। धनोपार्जन करते समय, अपनी तन्दुरुस्ती, मनकी शान्ति इत्यादि की आहुति मनुष्यको दे देनी पड़ती है, परन्तु धन इतने त्यागसे उपार्जनीय कदापि नहीं। सच्चा आनन्द न तो खरीदा और न बेचा जा सकता है। संसारमें, सबसे श्रेष्ठ वस्तु—उत्तम और स्वच्छ खानपान, वायु, स्वास्थ्य और सच्चा मन ये ही हैं और ये उत्कृष्ट वस्तुएं एक धनी वा एक गरीब मज़दूर दोनोंको बराबर ही मिल सकती हैं।

संसारमें सबसे निकृष्ट चीज़ें व्यथा, चिन्ता और पाप हैं। ये सब धनके द्वारा दूर करनेके बजाय इकट्ठे ही किये जाते हैं।

अब पाठक ही विचारें, कि धनकी गुरुता कहां तक है। यह सब तो व्यक्तिगत धनीकी बात हुई। अब राज्यके धनकी बात सुनें—पाठक जानते है, कि कौन सा साम्राज्य धनी और कौनसा दीन कहा जाता है। साम्राज्य जिसमें कि मनुष्य स्वस्थ और प्रसन्न हैं, वही धनी और इसके अतिरिक्त सब निर्धन है। जो मनुष्य साम्राज्यके धन-भण्डारको अनन्त समझते हैं, भूल करते हैं। यह भण्डार अधिक तो है, पर अथाह कदापि नहीं। जिस प्रकार एक मनुष्यकी थैली एक न एक दिन ख़ाली हो जाती है; उसी प्रकार एक साम्राज्यका धनागार भी व्यय होते

होते अन्तप्राय: हो ही जाता है। प्रत्येक साम्राज्य, दुर्दिनमें, परिमित व्ययी हो जाता है, परन्तु वही राज्य सच्चा बुद्धिमान है जो सुदिनमे अपव्ययी न हो।

धन बिना विवेकके कौड़ीका तीन है। धनका प्रधान फल, मनुष्यके लिये, धनोपार्जनके शोचसे रक्षित करना ही है। यदि धन होनेसे, दिन रात उसीके दुगने चौगुने की चिन्ता बनी रहती हो, उससे तो निर्धन होकर ही चिन्ता-रहित होना अच्छा है।

धन एक प्रकारकी मृगतृष्णा है। धनसे मनकी बागडोर ढीली और घमण्डकी मात्रा बढने लगती है। धनी कभी दीनोंको पैरसे कुचलते रहनेका निरा पत्थर ही समझने लगते है। दरिद्रता, केवल दो ही गुण, उद्यम और धैर्य्य चाहती है, परन्तु धनी यदि दानी, संयमी और बुद्धिमान न हुए; तो उनके लिये पद पद पर भय है।

धन कैसा भयावह है, यह इतिहास पूरे तौरसे बतलादेगा। युवा अवस्थामें, तुम यदि फजूल चीजोंको, जिनकी तुम्हें आवश्यकता नहीं, खरीदते हो, तो ध्यान रक्खो, कि वृद्धावस्थामें तुम्हें उन चीजोंको बेचना पड़ेगा, जिनकी बड़ी आवश्यकता तुम्हें होगी। युवावस्थामें, हमें इस प्रकार रहना चाहिये, जिससे वृद्धावस्थामें हाथ खाली नहीं पड़े। गत दिनकी आमदनीपर रहना ही ठीक है। आजकी आमदनीमें हाथ लगाना भूल, और भविष्य दिनकी आमदनी पर विश्वास करना सरासर भूल है।

यदि तुम वाणिज्य करते हो, तो धन इकट्ठा करनेके लिये जल्दी मत करो। जूएसे धन तो जल्द इकट्ठा होजाता है, परन्तु क्या जूआ खेलना उचित है? नहीं।

सुदिनमें यह भूल जाना कि दुर्दिन भी निकट है, मूर्खता है। साथ ही दुर्दिनमें, सुदिनके आनेका विचार, बुद्धिमानी है।

पाठक! अब ज़मींदारीकी बात लेवें। हमलोग ग्रीष्ममें प्रायः विचार करते है, कि तपिशके दो एक महीने, इस साल, शिमले वा नैनीतालमें बितावेंगे. परन्तु यह विचार करते समय हमारा ध्यान उस ओर नहीं जाता, कि पहाड़ी सौन्दर्य वा दृश्यावली हमारी बपौती नहीं। पाठक! शिमले वा नैनीताल इत्यादिके ज़मीन्दारोंको करका लाभ भले ही हो; परन्तु उनके सौन्दर्यके उपयोगमें उन्हें कुछ विशेष लाभ नहीं। प्रकृति दीन और धनी दोनोंके लिये एक सी खुली है।

भोज देनेवालेको भोज खानेवालेसे इतना ही अधिक लाभ है, कि उसको दूसरेको खिलानेका सन्तोष है, परन्तु यह बात दूसरेके साथ नहीं।

धन मनुष्यको अधिक चिन्तित बना देता है। यह कहावत है कि 'कम धन कम चिन्ता। धनका यदि बुद्धिमानीके साथ उपयोग किया जाय, तो निश्चयही यह एक प्रकारका आशीर्वाद सिद्ध हो सकता है। धन बुद्धिमानोंका सेवक है; परन्तु क्रूरता मूर्खोंकी। धन लालची मनुष्योंको सन्तुष्ट

कदापि नहीं कर सकता और संसारका धन-भण्डार भी कंजू-सको प्रसन्न नहीं कर सकता।

महात्मा बेकनकी सम्मति है, कि गुणियोंके लिये धनकी थैली ठीक उसी प्रकार है, जैसे भागनेवाली सेनाके लिये माल असबाबकी थैली—दोनों प्राणनाशक ही हैं।

किसी राजासे किसी ने कहा, कि तुम्हारे धनको देखकर अमुक जलता है। उसने उत्तर दिया, कि तब तो बड़े शोककी बात है' विचारेको दो दो दुःख हैं—एक निर्धनतासे, दूसरे डाहसे।

मनुष्य कहते हैं, कि अमुक मनुष्य धनसे बना है, परन्तु मैं तो कहता हूँ, कि धनकी कितनी ही अधिकता मनुष्यको नहीं बना सकती। किसी ने एक विद्वानसे अपनी पुत्रीकी शादीके विषयमें सम्मति ली। उसने उत्तर दिया, कि मेरी यह सम्मति है कि तुम अपनी लड़की की शादी उस मनुष्यसे जो धन रहित हो करा, न कि धन-सहित मनुष्य से।

प्रकृति से प्रेम।

जिसकी जितनी ही अधिकता होगी, उसकी उतनीही उपेक्षा भी होगी। विशेषण 'साधारण' स्वयमही अवज्ञा सूचक है, जैसे देखें कि, यदि वसन्त ऋतु जीवनमें एकबार आता, सूर्य्य वर्षमें एक दिन निकलता, इन्द्र-धनुषकी सुन्दरता एक सदीमें एकबार देखनेमें आती, वा फूल और ओसकी चमकती हुई बूंदें मणि वा हीरोंसे दुष्प्राप्य होतीं, तो इनका सौन्दर्य और मान कितना बढ़ जाता और इनसे हमें कितना आनन्द प्राप्त होता, परन्तु क्योंकि प्रकृति इन्हें मुक्तहस्त से वितरण करती है, इसलिये इनका आदर हमारी दृष्टि में घट गया है।

परन्तु पाठको! यदि हमलोग अपनेको सौन्दर्य्योपासक होनेकी पूरी शिक्षा देवें, तो इनका मान घटनेके बदले दिन दिन और भी हमारे लिये बढ़ता ही जावेगा। एक कविका कथन है, कि यदि इन्द्र-धनुष आधे घण्टेके लिये भी आकाश में स्थिर हो जाय, तो फिर हम लोग नेत्र उठाकर उसे देखना भी नहीं चाहते।

पाठक! मेरे जानते साधारण वस्तु ही सर्व्वोत्तम और महा उपयोगी होती है। तुच्छ पुष्पोंके गुच्छे, नीच पक्षियोंका कलरव, साधारण सूर्य्य, वायु और आकाश ही बुद्धिमानोंके लिये स्वर्गीय,

आनन्द की तालियाँ है। इन्हीं सबों के द्वारा वे अनुपम आनन्द लूटते है।

रङ्गविरङ्गे फूल कैसे मनोहर और नेत्रको सुखप्रद होते हैं, कहा नहीं जाता। वृक्षोंकी भांति भाँतिकी चटकीली पत्तियाँ, सुगन्धित मञ्जरियाँ, दुःखके समय में भी ऐसी बोध होती है मानों स्वर्गीय सङ्गीतोंसे पूर्ण देवकानन ही हो। ये उत्तम हृदय में, अपने माधुर्य्यसे, शान्तिका सञ्चार करने लगती हैं।

प्रकृतिकी प्रत्येक वस्तु एक न एक शुभ कार्य्यके लिये ही बनी है। केवल आँख और नहीं आँखकी बात है। जिन्हें देखना आता है, उनके लिये साधारण आकाश ही अक्षय आनन्द, विस्मय और प्रशंसा का कारण है। दिन में प्रखर सूर्य्यकी किरणोंकी तप्त रजतवत चमक, सन्ध्या समय सुवर्णआभा युक्त डूबते सूर्य्य की किरणों की हेमवत लाली और रात्रि होते ही नीलमणि के विशाल वितान में, हीरेके टुकड़ो की नाई आकाश कीशोभा, कौन वर्णन कर सकता है? इसकी शोभा किसका मन नहीं लुभा लेती?

पाठक जानते है, इस अनुपम सौन्दर्य्यमय आकाश का क्या काम है? प्रकृतिने अपने विचित्र शिल्पकारकी साधारण हस्त-पटुताके इस नमूनेको, मनुष्योंके दिखानेके लिये, संसार रूप अजायबघरको घेर कर खड़ा कर दिया है।

इस प्रदर्शनसे, मनुष्योंमें अद्भुत बाजीगर और निर्म्माणकर्त्ता ईश्वरको ढूँढ निकालनेकी प्रबल आकाङ्क्षा पैदा हो जाती है

और हमलोग ईश्वरके अस्तित्व पर विश्वास करने लग जाते हैं।

पाठक, जब इस प्रगट और नाशवान संसारमें इतनी सुन्दरता है, तो उस अलक्ष और अनन्त कर्त्तामें कैसी होगी, आप ही विचारें।

कहावत है, कि प्रकृति ईश्वरकी कीर्तिका वर्णन तो सैकड़ों मुखोंसे करती है; परन्तु उसकी दयालुताका परिचय उससे नहीं मिलता। परन्तु मैं इसके मानने में आपत्ति करता हूँ। मेरी समझमें यह दोनों काम करती है। शेख सादी अपनी एक कवितामें कहता है, कि प्रकृति ईश्वरकी दयालुता का भी पूरा परिचय देती है। ईश्वर प्रातःकालकी सुहावनी वायु बहाकर पृथिवी को हरा भरा कर देता है और वर्षा करके वृक्षोंमें पुष्प और नूतन पत्रोंका विकाश करता है एवं जलके रसमें मीठापन देता है इत्यादि। ये क्या ईश्वरकी दयालुताके नमूने नहीं हैं? अवश्य है।

प्रकृतिकी आश्चर्य्यमयी घटनाओंको देखकर, मैं सोचने लगता हूँ, कि ईश्वरकी बुद्धिमत्ताका यहीं अन्त होगया है क्या? परन्तु तत्काल एक ईश्वरीय शब्द उसी समय मेरे कानोंमें गूँजने लगता है—'नहीं नहीं, मूर्ख! इन वाह्य बातों पर ही भूल न जाना। अभी इस भूगर्भमें ऐसी ऐसी अजायबाते भरी पड़ी हैं, कि जिन्हें देख कर, नहीं नहीं सुन कर ही, तेरी बुद्धि चकरा जायगी।"

अँगरेज कवि वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) प्रकृति-प्रेमी कवि है। जोश में आकर एकबार इसने लिख मारा, कि विज्ञान और कलाओंकी नीरस कथाको दूर करो, अपनेको प्रकृति की सुन्दरता के देखने योग्य बनाओ।

यद्यपि कविका यह लेख उसके प्रेमका पूरा परिचय देता है, परन्तु उसे अपने मार्ग से भटककर, वृथा विज्ञान और कला पर इतना कड़ा आक्षेप करना उचित नहीं था। एक आलोचकके शब्दोंमें, मैं पाठकोंको कविकी इस उक्तिके गुण-दोष दिखलाता हूँ :—

आलोचक लिखता है "कवि महाशय। आप हमलोगोंको प्रकृति के विषय में प्रायः सुनाया करते हैं और निर्जीव में जीव देकर हजारों का मनोरञ्जन करते हैं, परन्तु इन वाह्य मनोरमताओंके अतिरिक्त एक प्रकारका और सौन्दर्य्य है। अध्ययन तथा अन्वेषण का एक अन्य प्रकारका विषय छिपा पड़ा है, जिसका जानना मनुष्य-बुद्धि पर निर्भर है और जो स्वयम् प्रगट नहीं होता। कवि महाशय। यह गुप्त विषय मनका चकरानेवाला प्रश्न है,—कि ये नैसर्गिक विषय जो हम प्रतिदिन देखते हैं क्योंकर और कैसे बने हैं, संसारमें उस समय क्या था, जब मनुष्यकी उत्पत्ति भी संसारमें नहीं हुई थी, ईश्वर का अस्तित्व है वा नहीं? इत्यादि, प्रश्नोंको हल करना केवल निरे प्रेमसे नहीं होनेका। विज्ञानकी आवश्यकता इसके लिये है। विज्ञानके द्वारा प्रकृतिमें प्रेम बढ़ेगा और ज्ञान।

अभी हम लोग नूतन आविष्कारोंके द्वार पर ही हैं। प्रकृतिमें एक भी ऐसी चीज़ नहीं, जिसका पूर्ण ज्ञान अभी हमें होवे। एक एक जीव और वनस्पतियोंके हालसे, पूरे तौरसे, अवगत होनेके लिये, वर्ष नहीं, समूचा जीवन खर्च हो जा सकता है।

अब मैं प्रकृतिके प्रेम तथा उसके अध्ययनसे क्या क्या लाभ हो सकते हैं, बतलाता हूँ।

विज्ञानमें अनुराग रखनेवाला शायद ही कभी अप्रसन्न रहता होगा और यदि कोई ऐसा निकल भी पड़े जो प्रसन्न नहीं रहता हो, तो मैं कह सकता हूँ, कि वह अपने आपके दोषसे दुःखी है। संसारके प्रत्येक वन, बाग़, ताल तलाई उस मनुष्यके लिये मनोरञ्जन के विषय हैं, जिसके प्राकृतिक दृश्योंके देखने को नेत्र हैं। मित्रों के बीच, बन्द कमरेमें बैठनेसे जो सुख प्राप्त होता है, उससे सैकड़ों गुणे सुख का अनुभव वह मनुष्य करता है, जो प्राकृतिक दृश्यों के बीच मैदान में बैठा है।

विज्ञान ने आज तक किसी को भी हानि नहीं पहुँचायी; बल्कि अपने में अनुराग करनेवालोंको भाँति भाँति के सुखोंसे परिपूर्ण किया है।

इसी प्रकार प्रकृति भी अपने प्रेमियोंको सदा प्रसन्न रखती है।

प्रकृति केवल मनुष्योंको आनन्द ही देनेवाली नहीं, बल्कि यह हम लोगोंको पथदर्शिका और शिक्षिका भी है। बुद्ध जब निर्वाण प्राप्तिके लिये, संसारकी धूल झाड़ते झाड़ते थक गया,

तो अन्तमें उसने प्रकृतिकी शरण ली, जिसका फल यह हुआ, कि घोर जङ्गलोंमें उसे प्रकृतिने मनोवाञ्छित की झलक दिखला दी।

महात्मा रस्किन को तो सौन्दर्य्य-प्रेम मानो धर्म्म सा हो गया था और हमारा यह कहना पुनरुक्ति होगी, कि रस्किन ने मनुष्योंको सौन्दर्य्य का उपयोग करना भी खूब ही सिखलाया है। सुविज्ञ पाठक मेरे कथनसे अपरिचित नहीं होंगे।

रस्किन का कथन है, कि कोई भी प्राकृतिक स्थल में, बीस पग भी, पर्वत, फूल, झरनों इत्यादि से बल, आशा और आह्लाद पाये बिना नहीं बढ़ सकता है अर्थात् पग पग पर सन्तोष और सुख प्राकृतिक दृश्यावलियोंमें मिलता है।

प्रकृति हृदय को आनन्द और विस्मय से ही केवल पूर्ण नहीं करती, बल्कि वह हमें कृतज्ञ होना भी सिखलाती है। प्रकृति का उपयोग, भिन्न मत, धर्म्मवाले सभी एक भावसे करते है। वसन्त ऋतु किसमें नूतन जीवनका सञ्चार नहीं करती?

शोक है, कि ऐसे अद्भुत संसार में जन्म लेकर भी, बहुतेरे प्रकृति से प्रेम किये बिना ही रह जाते है। उन्हे प्रकृति-सौन्दर्य्यके सुखसे कुछ करना नहीं। वे नेत्र रहते अन्धे है।

वर्त्तमान।

कल पर मत भूलो, क्योंकि तुम नहीं जानते हो कि एक दिनमें क्या से क्या हो जा सकता है। एक विद्वान्‌का कथन है, कि मनुष्योंका कार्य्य रूप एक समुद्र है, जिसमें ज्वार और भाठा आता रहता है, यदि नाविक ने ठीक समय पर ज्वारमें अपनी नौका डाल दी, तब तो सकुशल नौका पार लगी और यदि समय चूके तो फिर नौकाका वारा न्यारा हो समझो, अर्थात् कार्य्य कर ही कर डालो। विलम्ब सदा भयानक और हानिकारक होता है। जो बीत गया, वह तो चला ही गया, भविष्य शायद होवे ही नहीं, परन्तु रहा वर्त्तमान। बस, पाठक वृन्द! यही आपका है, इसका ही सदुपयोग करें।

वर्तमान ही कार्य्य करने, लड़ने और आत्मोन्नति का ठीक समय है, यदि आज तुम प्रस्तुत नहीं हो, तो क्या कल हो सकोगे?

कल यदि तुम्हारे लिये होवे ही नहीं, तब तुम क्या करोगे? अपनेको सहस्रायु जान, कार्य्य मत करो। कालके द्वारा अपनी चोटी दिन रात पकड़ी हुई ही समझो। कार्य्य यदि सउद्योग एकबार प्रारम्भ कर दिया गया, तो उसे अर्द्ध

समाप्त हो समझो। परन्तु यदि एक बार भी तुमने कमर ढीली की तो फिर समझ लो, कि वह समाप्त होनेके बदले दिक्‌-चक्रकी की नाईं दूर ही भागता जायगा।

कार्य्य में तत्परता के विषय में, अनेक लोकोक्ति विख्यात हैं। "लोहे को गर्म ही गर्म मोरो, नहीं तो ठण्डे होने पर तुम सफल-मनोरथ नहीं होसकते।" यदि कोई कार्य्य एकबार करदेनेसे सदाके लिये समाप्त होजाय, तो उसमें विलम्ब मूर्खता है, बस, उसे कर ही डालना ठीक है।

वर्त्तमानके सदुपयोग करनेके नाना गुण हैं। विलास ठीक पोस्तेके फूल वा हिम की नाईं है जो छूटते ही झड़ जाता है वा तनिक में पिघलकर बह जाता है। जीवन और संसार की भी ठीक यही दशा है, कि तनिक ही में "हाँ" और फिर तनिक में "नहीं" हो जाता है।

पाठको। जब जीवन ऐसा अचिरस्थायी है, तब तो और भी हम लोगों को अपने समय के विषयमें सावधान होना चाहिये।

जो वर्त्तमान समय का पूरा उपयोग करता है,वही बुद्धिमान है, क्योंकि यदि समय एक बार बीत गया, तो फिर आने का नहीं। जीवन जितना तुम्हें प्यारा है, उतना ही समय को भी समझो।

जिस समय तुम्हारे हृदय में कार्य्य करने की तरङ्ग आ जावे,बस उसे तत्काल आरम्भ ही कर दो, जिससे वह समाप्त भी

हो जाय। कल के लिये उसे छोड़ नहीं रखो, क्योंकि ऐसा भी सम्भव है, कि कल का सूर्य्य तुम्हारे लिये उदय होवे ही नहीं।

पाठकों को, मैं अब दो एक कथाओं से "समय" की बहुमूल्यता समझाता हूँ।

ग्रीस देश में, थीबेस प्रान्त का एक शासक एक बार बड़ा अन्यायपरायण निकला। उसको मार डालने के लिये अनेक षडयन्त्र रचे जाने लगे। षडयन्त्रकारियों ने विचारा, कि जिस समय वह भोजन पर बैठे, उसी समय उसे मारडालना चाहिये। गवर्नर के एक मित्रने उस षडयन्त्र का समाचार, एक पत्र में लिखकर, उसके पास भेज दिया। पत्र, जिस समय गवर्नर भोजन करने को तैय्यार था, उसके पास पहुँचा, परन्तु वह तो था बड़ा आलसी। चुपचाप, पत्र को जेब में यह कह कर डाल दिया, कि "ओह! पढ़ना लिखना कल होगा। आज चलो, अभी खा तो लेवें।"

गवर्नर ज्योंही खाने बैठा, कि दुष्टों ने स्त्री के रूप में, महल में घुस कर, उसे मार डाला।

पाठक! कल पढ़ने का विचार मन ही में रह गया और सर तन से जुदा हो गया।

जीवन न्यून नहीं, बल्कि अस्थिर है। हम लाखों उद्योग से भी होनेवाली बात नहीं जान सकते।

कार्य्य करने के लिये सबसे उत्तम उपदेश तो यह है, कि जब तुम्हें अनेक कार्य्य करने हों, तो पहले सबसे कठिन को

ही आरम्भ करो, क्योंकि जो आदि में अरुचिकार बोध होता है, वह प्राय: अन्त में रुचिकार हो जाता है।

कहावत है कि—"बूझ कर बझो, बझ कर मत बूझो।" यदि तुम युवा अवस्था का सदुपयोग करोगे, तो तुम्हारी वृद्धा-वस्था सुखसे कटेगी, परन्तु यदि वर्त्तमान का तुमने अवमान किया और वृद्ध होने पर यह सोच किया, कि हाय! युवावस्था में मैंने अमुक कार्य्य क्यों नहीं किया, तो उस समय का शोच निष्फल ही होगा—उस समय केवल यही कहकर सन्तोष करना होगा कि—

'समय चूक पुनि का पछताने'।

विवेक ।
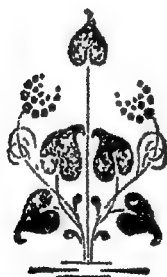
प्रश्न है, कि "विवेक" किसे कहते है और किसे "ज्ञान"? महात्मा सॉलोमनका उत्तर इस विषय में सुनने-योग्य है। वह कहता है, कि ईश्वर से डरने को "विवेक" और अकर्म को विचारने वा नहीं करने को "ज्ञान" कहते हैं। पाठक! मैं विवेक की परिभाषा एक दूसरे प्रकार से देता हूँ। दैविक वा सांसारिक वस्तुओं के ज्ञान को तथा उनकी व्यवस्थाओं के कारणों से पूर्ण परिचय को "विवेक" कहते हैं।

अस्तु, जो कुछ भी हो, इसमें संशय नहीं, कि हम सब एक-बारगी ही बुद्ध नहीं हो सकते, परन्तु यह भी कहना अत्युक्ति नहीं होगी, कि हम लोग सभी कोई अपने अपने विचारों को समुन्नत और परिपक्व करने के उद्योग करने के योग्य हैं।

पुरातन लेखों में एक कहावत है, कि किसी ने बुद्धिमान होने के लिये विवेक-सरिता का जल चाहा, परन्तु वह सरिता इस प्रकार दैत्यों से सुरक्षित थी, कि उस विचारे को विवेकी होने के लिये अपना एक नेत्र दैत्योंको देना पड़ा। पाठक! आप घबरायँगे, कि वाह! लेखक ने बुद्धिमान बनाने के लिये, कहावतके मिस, हमारे नेत्रों पर ही आक्रमण करना चाहा है।

नहीं, पाठक नहीं, अब नेत्र देकर बुद्धिमान होनेका समय नहीं है। अब तो केवल थोड़े से उद्योग से ही, आप बुद्धिमान हो जायँगे।

विचार और वाचन-शक्ति ही मनुष्य को पशु से अलग करती है। इनमें भी विशेष कर विचार ही उत्कृष्ट है। वक्तृता अनेक भूल और आपदाओं का कारण है। मैं जब कभी अपने मित्रों में कुछ बोलने उठता हूँ, तो मेरी इच्छा यह रहती है, कि जैसे वे मेरे विचारों से जानकार होवें, वैसेही मैं भी उनके विचारों से अवगत हो जाऊँ। बोलनेवाले का पूरा आशय समझ जानेके लिये, जितनी बुद्धिमानी की आवश्यकता है, उससे कम बुद्धिमानी चुप रहनेवालों के आशय को समझ जाने के लिये अपेक्षित नहीं। प्रायः सभी कोई अपने आप को आवश्यकता से अधिक बोलने के लिये निन्दा करता है; परन्तु कम बोलने के लिये आत्म-ग्लानि शायद ही किसी को होगी। अधिक बोलना मूर्खता और कम बोलना बुद्धिमानी है। मुँहको बन्द रखना, कान और नेत्रको खोले रहना, बुद्धि-मानी है, क्योंकि ऐसा करनेवाले दूसरे के सदुपदेशों को भर-पूर ग्रहण कर सकेंगे—बुद्धिमान मूर्खों से बहुत कुछ सीखते हैं, परन्तु मूर्ख बुद्धिमानोंसे भी कुछ सीखने नहीं पाते।

कोई कार्य्य जल्दी में करना ठीक नहीं; प्रायः राष्ट्रीय विषयों में देखा जाता है, कि शासकोंकी शीघ्रतासे हमारी संहितायें—क़ानूनी पुस्तकें—बिगड़ जाती हैं, जिसका फल यह होता है कि

दुबारे तिबारे उनको संशोधन करना पड़ता है। बहुतेरे विषयों में देखा जाता है, कि हम लोग जानते हैं कि अमुक कार्य्य में कुछ करना चाहिये, परन्तु जल्दी में कुछ कर बैठना ठीक नहीं। काम देरसे थोडा बिगड़ जाय तो कुछ पर्वाह नहीं, परन्तु कुछ ऐसा बेढंगा करके सम्पूर्ण को ही भ्रष्ट कर देना, बुद्धिमानी नहीं है। घड़ी की प्रशंसा तेज़ चलने में नहीं, बल्कि ठीक चलने में है।

पाठक! यदि तुम पर कुछ गाढ़ आ पड़े, तो जल्दी न कर बैठो; बल्कि चुपचाप सो रहो और मस्तिष्क को ठण्ढा और अपने ठीक मार्ग पर आ जाने दो, फिर उठकर जो कुछ कार्य्य तुम करोगे सब ठीक उतरेगा। कार्य्य करने के बाद जागते रहने से, करने के पहले सो रहना बुद्धिमानी है। कुछ नहीं करना सहज है, परन्तु करके फिर से उसका सुधारना कठिन ही नहीं; बल्कि असम्भव हो जाता है।

ज्ञानके आधार ही पर, विवेक की भित्ति खड़ी है। विवेक-धन को राजा अपनी सारी सम्पत्ति से भी नहीं ख़रीद सकता। यह एक ऐसी तृष्णा है, जिसमें शान्ति नहीं होती। जितना ही पीओगे, उतनीही इच्छा बढ़ती जायगी।

महात्मा पीटरका कथन है, कि जितनी बातें देखने, सुनने, जानने और सीखने योग्य हैं, सब का देखना, सुनना, जानना, और सीखना उचित है।

इस मतको एक लेखक ने कड़ी आलोचना की है। वह

कहता है, कि सब का ज्ञान होने से सबका आदर हमारी दृष्टि में कम हो जायगा। परन्तु, नहीं। मैं जोर से कह सकता हूँ, कि यह बात कदापि नहीं—पूर्वोक्तको मानना, मानों कहना है कि संसार में कोई वस्तु यथार्थ आदर के योग्य ही नहीं।

मूर्ख लोग ही सब चीजों को मान लेते है, परन्तु सच्चा जिज्ञासु जितनाही जानता है उतनाही उसका कौतूहल और आदर इस अद्भुत सृष्टि की ओर बढता जाता है।

इसमें सन्देह नहीं, कि ज्ञान ही विवेक का आधार है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि "विवेक" मुख्य और "ज्ञान" गौण है। विवेक-प्राप्ति का प्रथम उद्योग होना चाहिये, फिर ज्ञान भी मिल जायगा।

बुद्धिमान मनुष्य ही संसार में प्रसन्न है। "विवेक" सोना, चांदी इत्यादि से श्रेष्ठ है, बल्कि यो कहिये कि संसार की कोई मूल्यवान वस्तु इसकी तुलना नहीं कर सकती। विवेक के द्वारा हम लोग दीर्घायु, धनवान और महान हो सकते है, यह हमें शान्ति और सुख का देनेवाला है। यह जीवन-वृक्ष है। और वेही सच्चे भाग्यवान है जो इस वृक्ष का आश्रय लेते है।

बुद्धिमान दूसरों के अनुभव से लाभ उठाते है, परन्तु मूर्ख केवल अपने आपही में भूले रहते है। सदुपदेशों से लाभ उठाना, अपने अनुभव मात्र से लाभ उठानेसे कहीं अच्छा है।

पाठक! अनुभव कुछ सहज ही प्राप्त नहीं होता, इसमें

अनेक कष्ट अपेक्षित है ; जैसे हाथ जलने का अनुभव तब तक नहीं होता, जब तक हाथ जल ही नहीं जाता। बुद्धिमान लोग दूसरों के अनुभव से लाभ उठाते हैं और आप दुःख से बच जाते हैं, परन्तु मूर्खों को तो अपने कष्ट उठाये बिना कुछ आने का नहीं, इसका कारण यह है, कि वे दूसरों को मूर्ख समझते है।

अब एक प्रश्न होता है, कि विश्वास का आधार क्या है? हम विश्वास करते क्यों हैं? विश्वास दो बातों पर निर्भर है— (१) हमारे अपने अनुभव पर (२) दूसरों के कथन पर। मस्तिष्क-परिचालन निस्सन्देह कठिन कार्य्य है। हस्तचालन तो इसके सम्मुख खिलवाड़ है। परन्तु विचार-शक्ति कभी कभी हमें बड़े गोलमटोल में डाल देती हैं। जैसे, जब हम लोग इसके द्वारा संसार के विषय में सोचने लगते हैं और जब संसार के भेदोंका पता नहीं चलता ; तो चित्त ऐसा घबराता है, कि क्या कर डालें। विचार-शक्ति हमें इस प्रकार हतोत्साह कर देती है।

बहुतेरे ज्ञान हम लोगों से गुप्त रक्खे जाते हैं। वे शायद इसलिये,कि हमलोग उनके योग्य नहीं। ज्ञान-भण्डारके खुल-जाने से शायद हम लोग उनको समझें नहीं, वा भौंचके हो जावें ; इसलिये वे छिपा रखे गये है।

ग्रीक लोगों में शायद इसी कारण से ज्ञान का चिन्ह उल्लू रक्खा गया है। उल्लू चांदनी रातमें खूब देखता है, परन्तु

सूर्य्यकी चमक में अन्धा हो जाता है, इससे यह सिद्ध होता है, कि ज्ञान-भण्डार का एकबारगी खोल देना ठीक नहीं; बल्कि थोड़े थोड़े ज्ञानकी प्राप्ति ही ठीक है।

वर्तमान में, हम लोगों का उद्योग शनैः शनैः मूर्खताके अन्धकारको दूर करनेका होना चाहिये। गत शताब्दीमें इस ओर हम लोगों ने कुछ किया भी है। परन्तु प्रकृतिके मुख के आवरणको एकबारगी दूरकर, इसका पूरा हाल जान लेना एकबारगी नहीं हो सकता।

संसारकी आधी आबादीके मनुष्यों की दीनता से ही झगड़ते बीत जाता है। वे विचारे प्रकृतिका अध्ययन क्या करें? प्रायः उनको अनेक प्राकृतिक विषयोंका भ्रममूलक ज्ञान है, परन्तु वे उनको शोध भी नहीं सकते, क्योंकि दीनता से झगड़ते हुए वे दूसरे भ्रम के झगड़े को मोल लेना नहीं चाहते, जिसका फल यह होता है, कि उन्हें विचारने की शक्ति के उपयोग का भार दूसरों पर छोड़ देना पड़ता है और आप मूर्ख बने रहते है। इनका जीवन हताशमात्र हो जाता है। ये किसी प्रकार अपने जीवनके कर्म्मों को करके ही सुखी होते है।

पाठक, अपने कर्म्म को करनेवाला मूर्ख भी एक प्रकारसे सुखी है, क्योंकि उसके अन्तःकरण में कर्म्म करनेका एक प्रकार का सन्तोष रहता है और उसकी अन्तरात्मा देदीप्यमान हो जाती है।

हमारे सम्मुख प्राय सत्यता और बुद्धिमानी की अड़चनें उपस्थित हो जाती है; अर्थात बहुधा हम नहीं सोच सकते कि कौनसा कर्म सत्य और कौनसा बुद्धिमानीसे युक्त है, परन्तु यह मैं हांक कर कह सकता हूँ, कि कौन कर्म करणीय है, कौन नहीं, इसके सोचने में कोई कठिनाई किसीको कभी नहीं होती।

पाठक! अब हमे सब यह जानते ही है; तो फिर हमारा सुख हमारे हाथमें है। कार्य्य करने में ही कठिनाई है, न कि उसके हिताहित विचारनेमें। फलकी आकांक्षा करना फजूल है, क्योंकि जब तुम यथार्थ कार्य्य कर रहे हो, तो उसका फल स्वयमेव होगा। हाँ, देखना इतना अवश्य होगा, कि फल सर्वोत्तम हुआ वा केवल उत्तम।

लोग कहते हैं, कि बुरे काम ही बुरे होते हैं। अजी, मै तो कहता हूँ कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' चाहे वह बुरा हो या भला हो। उदाहरणार्थ देखें, यदि मनुष्य दानी है तो अच्छी बात है, परन्तु यही गुण यदि अपनी सीमा लांघ गया, तो वह तत्काल अपव्यय की राज्यमें पहुँच गया। इसी प्रकार वीरता, सहिष्णुता इत्यादिके साथ भी समझें; इन कारणोंसे साधारणकी पंक्ति में रहना ही श्रेष्ठ है।

किसी भी प्रकार इसमें संशय नहीं, कि पाप स्वयम ही अपना दण्ड और पुण्य आशीर्वाद है। पुण्य और सुख ऐसे गुथे हैं, कि एकके बिना एक नहीं मिलता। परन्तु पाठक! आप पाप

पुण्यको दु:ख और सुख के लिये न करें, बल्कि अपने चरित्र-गठन के लिये। सुख और दु:ख तो उसके अवश्यम्भावी फल हैं।

हम लोगोंको सदा सत्य पर दृढ़ रहना चाहिये, चाहे कुछ भी क्यों न हो। मनुष्य जो सत्यपर नहीं, उस पर दया आनी चाहिये। वह अपनी कुशल के लिये ईश्वर की विशेष दया पर निर्भर है। वह ईश्वर की विशेष दयाका पात्र है। जो अच्छे हैं, वे ईश्वरके कृपा-पात्र हैं, क्योंकि वे तो अच्छे बनाये ही गये हैं। उनके लिये और क्या चाहिये? परन्तु रहे बुरे, इन पर ही ईश्वर की कृपा चाहिये।

संसार में बहुतेरे ऐसे हैं जो कष्ट लेते हैं और बहुतेरे ऐसे हैं जो कष्ट देते हैं। कष्ट देने वाले स्वयम दु:खी हैं और दूसरोंके दु:खके कारण हैं, परन्तु कष्ट लेनेवाले दूसरों के ही सुखके कारण नहीं, बल्कि अपने आपके भी सुखदाता हैं।

तुच्छ से तुच्छ सहायता वा उत्तेजक वचन भी दु:खी मनुष्य के लिये अमृतका कार्य्य करता है, वह प्रसन्न हो जाता है और क्षणभरके लिये अपना दु:ख भूल जाता है। हमें इसलिये मिष्टभाषी होना चाहिये।

प्रबन्धके अन्तमें, मैं सदसद्विचार-शक्तिके महत्व का वर्णन करके इसे समाप्त करना चाहता हूँ।

विचार-शक्ति केवल हमारी रक्षिका और मार्ग-प्रदर्शिका ही नहीं, वरन् यह हमारे कार्य्यों की ऐसी साक्षी है, जो लाखों दबाव पर भी झूठ बोलने या पीछा छोड़ने की नहीं। हमलोग

जिह्वा को रोक सकते है, आकृतिको पलट सकते है और क्रोधको शान्त कर सकते हैं ; परन्तु विचार-शक्ति को, इसके क्षीण स्वरको, बन्द करदेने की क्षमता ईश्वरने किसीको दी ही नहीं।

पाठक ! बस, ऐसे निष्पक्ष मित्र (विवेक)की ही शरण लेना बुद्धिमानी है।
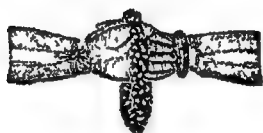
मनकी शान्ति

मन की शान्ति मनुष्यों के अपने कर्म्म पर ही निर्भर है। यह दूसरोंके किये नहीं होती। राष्ट्र की शान्तिकी तुलना, कभी कभी, व्यक्तिगत शान्तिसे कर दी जाती है, परन्तु दोनों में एक महान विभिन्नता है। राष्ट्र कितना ही न्यायपरायण वा शान्ति-प्रिय क्यों न हो, उसकी शान्ति स्थिर नहीं रह सकती, क्योंकि ऐसी सम्भावना है, कि निकटवर्ती राज्य लोभी और लड़ाके हो जायँ, तो उस समय तो उस विचारे को बिना लड़े चलाइ नहीं।

परन्तु वाह्य सङ्गति मनुष्यकी शान्ति का नाश नहीं कर सकती, इसका नष्ट होना वा नहीं होना, अपने ही पर निर्भर है।

पाठक देखें, कि अशान्तिका कारण क्या है?

मनुष्य प्रायः अपनेको तुच्छ विषयोंपर अधिक शोच शोचकर दुःखी बना लेता है। जैसे यदि गाड़ी छूट जाय, कहीं कोई खेल हारजाय वा किसीने कटु आलोचना करदी, तो इन सबों के लिये वृथा दुःख करना मूर्खता है। मैं कहता हूँ, कि जब तक जीवनकी अत्यावश्यक बातें मज़े में होती-जाती हैं,

जैसे खाना पीना मिल रहा है, निकटतम कुटुम्बियों का स्वास्थ्य अच्छा है इत्यादि—तो उस समय वृथा छोटी बातों के लिये अशान्ति फैलाने की क्या आवश्यकता है ?

शरीरकी भाँति चित्त भी रुग्न हो जाता है , ऐसी अवस्थामें उसका दूर करना तो अत्यावश्यक है, परन्तु सहज नहीं। तुच्छ दुःखोंसे बडा कष्ट नहीं हो सकता। केवल यदि हम उन्हें संयुक्त होनेसे रोके रहें । यदि हम भिन्न दुःखों को भिन्न स्थानों में रखछोड़ें और उन्हें मिलकर तिलका ताड़ नहीं होने दें, तो फिर उनसे हमारी कोई अधिक हानि नहीं हो सकती।

संसार में केवल एक ही जीव है, जिसे हम यदि चाहें तो प्रसन्न रख सकते हैं। यह जीव दूसरा कोई नहीं है, यह हमारी अपनी आत्मा है। प्रत्येक मनुष्य यदि चाहे तो अपने को सन्तुष्ट और प्रसन्न रख सकता है। यह कार्य्य अपने ही किये हो सकता है। दूसरों की लाख सहायता से भी यह नहीं होने का। कहावत है, कि यदि तुम अपने आप में शान्ति नहीं पा सकते ; तो फिर दूसरी जगह ढूँढ़नेसे, क्या यह प्राप्त हो सकती है ?

प्रायः रात्रि समय, सोनेके वक्त, सन्ध्याकी छाया की नाईं दुःख की छाया भी बढ़ती जाती है ; क्योंकि निस्तब्ध निशा में, पुरानी बातें आपसे आप स्मरण आ आकर, हमें भूतोंकी नाईं सताने लगती हैं।

हमलोग अपने तईं आप ही पीड़ा देते है, दूसरा कोई

इसें पीडा नहीं दे सकता। सबसे बडी विपत्ति तो वह है जो कभी आती नहीं, जिसका निर्माण हम अपने मनही मन कर, दुःखी होते रहते हैं।

पाठक! आनन्दका सर्वोत्तम नियम यह है,कि जितनाही अधिक हम दूसरोंका विचार करेंगे, जितना कम अपना, उतने ही अधिक हम सुखी होंगे। अपने आप को मिटा दो, फिर देखो तुम्हें कैसा सच्चा आनन्द मिलता है। हम लोग अपने तईं वृथा कष्ट देते हैं। अजी, भविष्य के दुःखोंके विचारसे क्या लाभ "वे हो न हों"। विपति जब आजाती है, तब तो वह, दुःखकर होती ही है। फिर जो रात दिन यही सोचा करते हैं, कि अमुक विपत्ति आई, अमुक पहुँची, वे तो अपने दुःखको और भी द्विगुणित करते हैं। मृत्यु, यदि बिना विचारे, अकस्मात, आजाय तो उतना दुःख बोध नहीं होता, परन्तु मृत्युके दुःखों का पूर्वशोच ही कष्टप्रद है।

हम लोगों के यहां एक कहावत चली आती है कि "यदि मनुष्य, जीवन-गृहमें आनन्द के द्वार से प्रवेश करे, तो दुःखके द्वार से ही निकलना पड़ेगा" परन्तु, यदि पहले ही दुःख उठा लेवे तो फिर अन्तमें सुख भी अवश्यभावी है। पाप संसार की सब आधीनताओं से बुरा है। पापियों को परतन्त्रता की बेडी ऐसी जकड जाती है, कि जिससे छूटना असम्भव हो जाता है।

अपने विषय में दूसरों की सम्मति की अधिक पर्वाह

मत करो, बल्कि अपनी सम्मति भी अपने विषयमें बँध जाती है, वही बड़े महत्व की है।

हम लोग अपने ऊपर दूसरों का अधिकार सहन नहीं कर सकते, फिर अपनी इन्द्रियों को क्यों हम अपने ऊपर अधिकृत होने देते हैं, आश्चर्य है। इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये। मूर्ख स्वयं ही लज्जित होते हैं। क्रोधी मनुष्य जो तनिक में तिमक जाते हैं, फिर आपसे आप पश्चात्ताप करते हैं; इसलिये मनोविकारों के पराभूत होना उचित नहीं।

मैं अब बतलाता हूँ, कि दूसरों के किये तिरस्कारों को हमें किस प्रकार ग्रहण करना चाहिये:—

यदि तिरस्कार करनेवालेको मालूम होगया, कि तुम उसकी अवज्ञासे अप्रसन्न होगये, तब तो उस की जीत होगई, क्योंकि उसका तो मतलब यही था—परन्तु यदि तुमने उसकी चोटको अपमानके साथ हँसते हँसते उड़ा दिया, तब देखो वह कैसा फिट्टा पड़ता है और लज्जित होता है।

सुख-प्राप्ति का दूसरा उपाय परिश्रम है। मनुष्य जो अपने कार्य्य को दत्तचित्त होकर करता है, अपने कर्म्म से अपने आपको पवित्र बना देता है। कार्य्य यदि विचार पूर्वक और सपरिश्रम किया जाय, तो वह स्वयं आनन्द का कारण हो जाता है। कुछ पर्वाह नहीं, कर्म्म तुम्हारा कुछ भी हो; यदि तुम मोचीका काम करते हो तोभी वह पवित्र

है, क्योंकि वह ही तुम्हारा कर्म्म है। एक चित्रकार ने अपने विख्यात होने का गुप्त कारण पूछे जाने पर बतलाया था, कि कठिन परिश्रम ही उसका एक मात्र सहारा था। कोई मनुष्य यदि सदा दूसरों के आनन्दकी इच्छा करता है वा दिन भर में वह अवश्य दो एक कृपा दूसरों पर करता है, तो फिर वह क्यों स्वयं सुखी नहीं होगा?

प्रश्न है, कि जीवन की कठिनाइयों का क्या फल है और कठिनाई कहते किसे हैं?

जीवन में कोई लाभ बिना कष्टके प्राप्त नहीं। जीवन, यदि सच पूछो तो, निरानन्द हो जाता, यदि इसमें कठिनाइयाँ नहीं होती, यदि प्रत्येक कार्य्य का फल पहले ही से जाना-होता, तो क्या कार्य्य करने में कुछ अनुराग होता? खेल यदि बराबरीवाले से नहीं, तो जीतने में कुछ आनन्द नहीं आता, उसी प्रकार विजय भी तभी सुखप्रद बोध होती है; जब शत्रु लोहा सहनेके योग्य हो, वरन् निर्बल को मार कर विजयी होना भी कोई बात है?

चाहे हमें रुचे या नहीं, जीवन एक अविराम स्वाधिक परीक्षा है। कोई कठिनाई ऐसी नहीं जिस से हमें लाभ न हो। ऐसा कष्ट नही जो ठीक प्रकार उद्योगसे अन्तमें छिपे रूपमें आशीर्वाद सिद्ध न हो। भूल यदि सच्ची भूल है तो वह दुर्भाग्य कदापि नहीं, इसका सदुपयोग हो सकता है, इससे हम आगे के दिनोंमें सावधान होना सीखेंगे—अनुभूतभूल

विज्ञानों में असिद्धि प्रायः एक भूल को दूर करने में सहायता देती है। इसके द्वारा पुनः परीक्षा में सिद्धि-लाभ की सम्भावना अधिक हो जाती है।

पाठक! एक कविकी उक्ति है, कि "वह कैसे आनन्द का समय होता, यदि संसार से स्वार्थ का राज्य उठजाता और मनुष्य केवल दूसरों के हित की ही कामना करता।" इस सार्व-लौकिक प्रेम का यह फल होगा, कि संसारसे परस्परका युद्ध लोप हो जायगा और शान्ति, सूर्य्य-रश्मिकी नाईं, थल जल, सर्वत्र फैल जायगी। जब मनुष्य प्रेम का नेम निबाहने लगेगा तथा जब उसकी सब कार्य्यों में परोपकार की सुगन्ध आने लगेगी, पाठक! उस समय उसका चरित्र समुज्वल और जीवन आनन्दमय हो जायगा।

अब कुछ देरके लिये, मैं पाठकों को व्यवसाय और व्यव-सायियोंके विषयमें कुछ उपयोगी बातें सुनाऊँगा।

यदि कोई धनी मनुष्य व्यवसाय के लिये उत्सुक है, तो इसका कारण यह नहीं, कि वह धनका स्वामी है। जिस कार्य्य में अधिक उत्कण्ठाकी सम्भावना हो उसका करना ही ठीक है, क्योंकि धन-प्राप्ति सुखके लिये है, न कि उत्कण्ठा के लिये। जिसमें लाभकी सम्भावना हो, परन्तु जिसका फल निश्चित न हो उस व्यापार में और निश्चित व्यवसायमें बड़ा अन्तर है। पहला भयपूर्ण, दूसरा भयरहित है।

मैं यह नहीं कहता, कि व्यवसाय में सदा लाभ निश्चित

रूपसे हो होता है, क्योंकि प्रायः देखने में आता है, कि कृषक जो सच्चे व्यवसायी है, उन्हें भी अतिवृष्टि, अनावृष्टिके कारण पूर्ण घाटा लगजाता है। मेरे कहनेका मतलब केवल इतनाही है, कि व्यापार ऐसा करना चाहिये, जिसमें मनको शान्ति भी मिल सके। कार्य्यको व्यग्रतामें चित्तको शान्त रखना कुछ सहज नहीं, परन्तु जिन्हें यह असम्भव बोध होता है उनके लिये सबसे अच्छा उपदेश तो यह है, कि वे कार्यसे सदाके लिये हाथ ही खींच लें—धनके लिये अपनेको उत्कण्ठित बनाये रहना उचित नहीं। पाठक! मेरे परिचितोंमें बहुतेरे ऐसे देखने में आये हैं, जो जीवन के कठिन से कठिन कार्य्य करते हुए भी, अपनी अन्तरात्मा में शान्ति, सुख, सन्तोष और प्रेम के स्वर्गीय गान की ध्वनि स्थिर रखने में सफल हुए है। इस प्रकार बहुतेरे कर्म्मोद्युक्त जीवनमें भी पूर्ण शान्ति पाते है, पर बहुतेरे शान्त जीवनमें वृथा उत्कण्ठित रहते हैं।

पाठकों का विचार होगा, कि जङ्गल में अकेले जा रहनेसे शायद शान्ति मिलती हो, परन्तु, नहीं पाठक। नहीं, आपने कहावत नहीं सुनी, "सूना गृह भूत का डेरा है," अर्थात यदि आप बिना काम धन्धे के चुपचाप अकेले बैठे रहेंगे, तो आपकी इच्छाएँ और भी प्रबल होती जायँगी और बुरे कर्म्म भूत की नाईं आप के कार्य्य-शून्य मस्तिष्कमें अपना डेरा जमा लेंगे—शान्ति तो बाहरकी चीज नहीं, यह तो अन्तःकरणकी है। यदि चित्त आपका व्याकुल रहा, बाह्य शान्ति-

पूर्ण हो रहो, तो क्या आपको शान्ति मिल सकती है? मेरे जानते नहीं।

इंगलैण्डके प्रधान मन्त्री ग्लेडस्टोन से बढ़कर तो शायद ही कोई मनुष्य उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य्य करता होगा, परन्तु इतना होते भी वह किस प्रकार अपने चित्त को शान्त रखता था, सुनने और सीखने-योग्य है। वह जब अपने कार्य्य से निबटता, तो सम्पूर्ण व्याकुलताओंको वहीं ही तिलाञ्जलि दे, निश्चिन्त चित्त से अपने गृहपर आता और यहाँ अपने पुस्तालयमें शान्त हो बैठता था। उसका भी कथन है, कि जहाँ की जौन चीज हो उसको वहीं ही रखना बुद्धिमानी है, जैसे राज्य कार्य्य की चिन्ता को राज्यदर्बार तक ही रहने देना चाहिये, फिर जब घर आये तो चिन्ता कैसी।

गृह, शान्त वा अशान्त उसके अधिवासियों के कारण होता है—जो स्वयं शान्त-चित्त है उसका गृह यदि अशान्त भी हो, तो कुछ अधिक दुःख नहीं देता, परन्तु वे भी दिन रात व्यग्र रहने वाले है। उनके लिये गृह में एक शान्तिपूर्ण स्थानका रखना आवश्यक है, जहाँ वे अपने दिन भर के कार्य्य के बाद विश्राम कर सकें—व्यवसायमें सफल मनोरथ होने के लिये मनुष्य को शान्त-चित्त होना चाहिये—धैर्य्य और दृढचित्तता से पत्तों से रेशम निकलता है।

अब धन के विषयमें भी कुछ सुनें। धनके द्वारा संसार की प्राय: सब वस्तुएँ ख़रीदी जा सकती है, परन्तु तीन चीज़े ऐसी

है, जिनका खरीदना धन से नहीं हो सकता। वे तीन वस्तुएँ,—स्वास्थ्य, शान्ति और सुख है। परन्तु आश्चर्य तो यह है, कि ऐसे बहुमूल्य रत्न, जिन्हें धन भी नहीं खरीद सकता, इतने प्रचुर रूपसे विद्यमान है कि जिसको इच्छा हो धनी, निर्धन, ऊँच, नीच सभी उन्हें अपने लिये उठा ले सकते हैं। पूर्वोक्त रत्नों में दो तो धन के द्वारा प्राप्त किये जाने के बदले उससे ही नष्ट हो जाते हैं। वे दोनों स्वास्थ्य और शान्ति है। पहला धन से खरीदे हुए उत्तम भोजनों के खाने से और दूसरा धन के नाश हो जाने के भय से नष्ट हो जाता है।

हम लोग सभी कोई यह जानते हैं, कि दुःखी होना कितना सहज है। आज आप खूब खा लेवें पी लेवें, देखिये कल ही आप बीमार पड जाते हैं। खुली हवा में टहलना फिरना छोड देवें, फिर देखें कि कितनी जल्दी अपच रोग से आप रुग्न हो जाते हैं, इसी प्रकार अधिक व्यय करने से दरिद्र इत्यादि।

यदि दुःखी होना जाननेवालों की कमी नहीं, तोभी सुखी होना जाननेवाले भी बहुतेरे है।

यदि तुम केवल अपने ही लिये दिन रात काम करो, तब तो तुम्हें बोध होगा, कि तुम शीघ्रही वृद्ध हो गये और तुम्हारी इन्द्रियों ने जवाब देदिया; परन्तु यदि परोपकार करने में तुम्हारा समय व्यतीत होता है, तब तो आमरण तुम्हारी शक्ति बनी रहेगी और तुम्हारे चित्त का आनन्द युवा सा रहेगा।

संसार में जब तक मनुष्य के मित्र है तब तक तो किसी का जीवन व्यर्थ नहीं कहा जा सकता। मनुष्य सदाही परोपकार कर अपना जीवन उपयुक्त बना सकता है। तुच्छ से तुच्छ मनुष्य भी कहानी के "मूसे" की नाईं, बड़े से बड़े सिंह का उपकार कर सकता है।

हमलोगों का संसार तो बड़ा सुन्दर है, परन्तु इसमें एक कणिका का भी लाभ, बिना कठिन परिश्रम के, नहीं हो सकता। यहाँ हताश होने की आवश्यकता नहीं और जो शीघ्रही हताश हो जाते है वे विजयी नहीं होते। धैर्य के साथ कार्य्य करना यहाँ आवश्यक है। कार्य्य करना कुछ लज्जा की बात नहीं; बल्कि इसके द्वारा मनुष्य का स्वास्थ्य बना रहता है, जिससे शान्ति और सुख मिलता है।

शोक दुःख इत्यादि जीवन में बाहर से नहीं आते; बल्कि भीतर से इनकी उत्पत्ति है। दुःख तो सभी को होता है; परन्तु यदि हम सुख का पल्ला भारी रखें, तो दुःख उतना दुःखप्रद न होवे। ईश्वर हम लोगों से ऐसी किसी बात की इच्छा नहीं करता, जिसमें हमारा स्वार्थ बँधा न हो।

क्रोधी मनुष्य अपने आपको दुःखी बनाये रहता है, इसी प्रकार अधिक खाने पीनेवालों की भी ऐसी ही दशा है।

कार्य्य अधिक करना भी मना है। कुछ समय हमें प्रकृति-सौन्दर्य्य के देखने के लिये भी अलग कर लेना चाहिये, इससे मन प्रसन्न और चित्त शान्त रहता है।

दूसरों पर विश्वास रखना भी सुख का एक कारण है। विश्वास करने से दूसरों की शंका जो अपने ऊपर होती है और जिससे हृदय को कष्ट पहुँचता है दूर हो जाती है।

जीवन शोक और कष्ट पूर्ण है, परन्तु दया इसके कड़वे-पन को दूर कर देती है। दया हमारे अपने और दूसरों के जीवन को सुखमय बना देती है—जैसे जल के सिंचन से मार्ग की धूल दूर हो जाती है, उसी प्रकार दयावारि का प्रवाह भी जीवनकी कष्ट रूप धूल को बहा छोड़ता है। अपने आप पर क्रूरता हो तो हो, परन्तु दूसरों पर कदापि नहीं। चरित्र न्याय से अधिक पक्का होना चाहिये—तुम स्वयं भूल मत करो, परन्तु यदि दूसरा भूल कर बैठे तो उसे क्षमा कर दो। दूसरों को बुरा मत समझो; इससे दूसरे तुम्हारे ऊपर भक्ति करेंगे और तुम्हारा मान करेंगे।

धर्म क्या है?

पाठक! आज दिन जितने धर्म्म देखने में आते है, उनमें अधिकतर ऐसे है जो प्राकृतिक भित्ति पर स्थित न होकर, प्रायः अन्ध-विश्वासों पर ही आधारित है। परन्तु मैं किसी धर्म्म पर आधार नहीं करता। मै सभी धर्म्मों को आदर की दृष्टि से देखता हूँ। सभी धर्म्मों में एक न एक अच्छी बात है। मुसल्मानी धर्म्म संयमी होना, हिन्दू धर्म्म संसार से विरक्त होना, बौद्ध धर्म्म अहिंसक होना इत्यादि सिखलाता है।

धर्म्म के लिये सब से प्रधान बात तो यह है, कि इसकी कुछ पर्वाह मत करो, कि तुम हिन्दू हो, मुसलमान हो, या बौद्ध हो, पर विचार इसका रक्खो कि जो कुछ भी तुम्हारा धर्म्म हो उसी पर अटल रहो। उसके नियमों से अपने को बद्ध समझो।

हम लोग यह कहने में भलेही समर्थ नहीं हो सकते, कि हमारी उत्पत्ति और मृत्यु क्यों और कैसे हुई, किन बातों पर विश्वास करें किन पर नहीं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि हम लोग यह खूब जानते है, कि हमारा धर्म्म क्या है।

पाठको! अपने धर्म्म पर दृढ रहे, फिर शान्ति ही शान्ति है।

शरीर के लिये जो विश्राम है, वही मन के लिये शान्ति है। मनुष्य का धर्म्म है, कि शान्तिमय होकर रहे। आन्तरिक शान्ति, बाह्य शान्ति, और नित्य शान्ति, मनुष्य के साथ शान्ति, ईश्वर के साथ शान्ति, शान्ति अपने साथ अर्थात् जिधर ही दृष्टि जाय उधर ही शान्ति।

ईश्वर को अपने आप में ढूँढो और निश्चय जानो कि, तुम उसे पालोगे। उसी के साथ शान्ति और सुख है।

ॐ शान्तिः।